अध्याय 1

आरंभिक जीवन

0822CH01

सिद्धार्थ का जन्म

प्राचीन काल में भारत में एक प्रसिद्ध राजवंश था नाम था 'इक्ष्वाकु वंश'। इसी वंश के शाक्य-कुल में शुद्धोदन नाम के एक राजा हुए। कपिलवस्तु उनके राज्य की राजधानी थी। उनके राज्य में सारी प्रजा सब प्रकार से सुखी और सुरक्षित थी। पृथ्वी जैसी गौरवशाली उनकी पत्नी थी, नाम था-माया।

एक रात महारानी माया ने एक विचित्र स्वप्न देखा, उन्होंने देखा, जैसे चंद्रमा बादलों में चुपचाप प्रवेश करता है, वैसे ही एक सफ़ेद हाथी उनके शरीर में प्रवेश कर गया है। इससे उन्हें न किसी प्रकार का भय हुआ न कष्ट। उन्हें सुखद अनुभूति हुई कि उन्होंने गर्भधारण कर लिया है।

सचमुच गर्भधारण करने के कुछ मास बाद महारानी माया को किसी सघन वन में एकांतवास करने की इच्छा हुई। उन्होंने अपने पति महाराज शुद्धोदन से निवेदन किया कि अब वे कुछ समय के लिए नंदन वन के समान सुंदर लुंबिनी वन में निवास करना चाहती हैं। अपनी गर्भवती पत्नी की इच्छा का सम्मान करते हुए महाराज शुद्धोदन ने स्वीकृति प्रदान की और अनेक सेवक-सेविकाओं के साथ महारानी ने लुंबिनी वन के लिए प्रस्थान किया।

कुछ समय तक सुख से लुंबिनी वन में निवास करने के बाद एक दिन महारानी को लगा कि अब प्रसवकाल आ गया है। अत: वे एक शय्या पर लेट गईं। उस समय अनेक स्त्रियों ने उनका अभिनंदन किया। जैसे ही पुष्य नक्षत्र का उदय हुआ, महारानी माया ने बिना किसी पीड़ा के एक पुत्र को जन्म दिया। उन्हें लगा, जैसे वह आकाश से उतर आया हो। उसका अंत:करण पवित्र था, उसके शरीर से तेज निकल रहा था, जिससे सभी दिशाएँ प्रकाशित हो गईं। सूर्य के समान तेजस्वी, परंतु देखने में चंद्रमा के समान प्रिय लगने वाले इस बालक के शरीर से प्रकाश निकल रहा था।





उसी समय आकाश से दो जल-धाराएँ प्रवाहित हुईं–एक शीतल और दूसरी उष्ण। इनसे इस बालक का अभिषेक हुआ। सोने और चाँदी से निर्मित तथा मूँगे–मणियों से जड़ित शुभ्र शय्या पर जब वह बालक विराजमान हुआ तो उसके चारों ओर स्वर्ण-कमल हाथों में लेकर यक्षों के राजा खड़े हो गए, आकाश में देवताओं ने उसका अभिनंदन किया और बुद्धत्व-प्राप्ति के लिए आशीर्वाद दिए।

इस बालक के जन्म के समय आकाश से सुगंधित लाल और नीले कमलों की वर्षा होने लगी। मंद-मंद पवन प्रवाहित होने लगी तथा सूर्य और भी अधिक चमकने लगा।

इस नवजात दिव्य शिशु के दर्शन करने के लिए आए दिव्य पुरुषों से वह वन–प्रांतर पूरी तरह भर गया, उन्होंने बालक पर पुष्पों की वर्षा की। इस बालक के जन्म का कुछ ऐसा प्रभाव हुआ कि जो पशु प्रकृति से ही हिंसक थे, वे हिंसा भूल गए, सारे संसार ने अपूर्व शांति का अनुभव किया। विभिन्न पशु-पक्षी मधुर स्वर में बोलने लगे, नदियाँ शांतिपूर्वक बहने लगीं, सारी दिशाएँ निर्मल हो गईं और निरभ्र आकाश में दुंदुभि बजने लगी। केवल माया को छोड़कर सारा संसार इस बालक के जन्म से अत्यंत प्रसन्न हो गया।

बालक के अद्‌भुत दिव्य जन्म को देखकर महाराज शुद्धोदन की आँखों से भय और प्रसन्नता की अश्रुधाराएँ प्रवाहित होने लगीं। बालक की अतिमानवीय शक्ति को देखकर माता माया भी भय और प्रीति से भर गईं। इस अवसर पर वृद्ध महिलाओं ने मंगलाचरण किया और नवजात शिशु के उज्ज्वल भविष्य के लिए देवताओं से प्रार्थना की।

आचरणशास्त्र के ज्ञाता और शीलवान ब्राह्मणों ने जब बालक के सभी लक्षण सुने और उनपर विचार किया तो अत्यंत प्रसन्न होकर उन्होंने राजा से कहा— "हे राजन, आपका पुत्र आपके कुल का दीपक है। आप किसी प्रकार की चिंता न कीजिए। आनंद-उत्सव मनाइए, क्योंकि यह बालक न केवल आपके वंश की वृद्धि करेगा अपितु यह संसार में दुखियों का संरक्षक भी होगा। दीपक के सम्मान प्रकाशवान तथा सोने की कांति से युक्त शरीर वाले इस बालक में जो लक्षण हैं, उनसे लगता है कि यह तो बुद्धों में श्रेष्ठ होगा या परम राज्यश्री प्राप्त करेगा। यदि यह पृथ्वी के राज्य की इच्छा करेगा तो न्याय से सारी पृथ्वी को जीतकर सभी राजाओं में ऐसे ही शोभायमान होगा, जैसे सभी ग्रहों के बीच सूर्य प्रकाशित होता है। यदि वह मोक्ष के लिए वन जाएगा तो अपने तत्वज्ञान से सभी मतों को परास्त



कर सारे संसार में सम्मानित होगा और सुमेरु पर्वत के समान प्रतिष्ठित होगा। जैसे सभी धातुओं में स्वर्ण, पर्वतों में सुमेरु, जलाशयों में समुद्र, प्रकाशपुंजों में सूर्य श्रेष्ठ है वैसे ही आपका यह पुत्र सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ सिद्ध होगा।"

ब्राह्मणों की ऐसी बातें सुनकर राजा ने पूछा— "आपने इस बालक में जिन लक्षणों को देखा है, वे न तो पूर्ववर्ती राजाओं में देखे गए हैं और न ही ऋषि-मुनियों में। इसका क्या कारण है?" ब्राह्मणों ने राजा का समझाते हुए कहा— "बुद्धि, सुकर्म और यश के विषय में पूर्ववर्ती या परवर्ती का प्रश्न महत्त्वपूर्ण नहीं होता है। इस प्रकार के गुण किसी विशेष कारण से ही उत्पन्न होते हैं। इस संबंध में आप कुछ दृष्टांत सुनिए। विभिन्न गोत्रों के आदि पुरुष–भृगु और अंगिरस जिस राजनीति शास्त्र को नहीं बता सके, उसी राजनीति शास्त्र को उनके पुत्र शुक्र और बृहस्पति ने बता दिया। पुराकाल में जब वेद लुप्त हो गए थे तो आगे चलकर व्यास ने उन्हें संपादित किया। इस कार्य को वशिष्ठ जैसे ऋषि भी न कर सके थे। इसी तरह जिस कार्य को वाल्मीकि ने कर दिखाया था वह कार्य उनके पूर्ववर्ती च्यवन ऋषि नहीं कर सके थे। अत: राजन, इस श्रेष्ठता का प्रमाण न तो अवस्था से है और न ही वंश से। श्रेष्ठता को कोई भी, कहीं भी प्राप्त कर सकता है। इतिहास बताता है कि जिन कार्यों को पूर्ववर्ती ऋषि और राजा नहीं कर सके, उन्हीं कार्यों को उनके परवर्ती व्यक्तियों ने कर दिखाया।"

ब्राह्मणों से इस प्रकार आश्वासन और अभिनंदन प्राप्त कर राजा के मन की शंकाएँ मिट गईं। वे अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्राह्मणों को खूब दान-दक्षिणा दी और उन्हें सम्मानित कर विदा किया।

उसी समय महर्षि असित को अनुभूति हुई कि इस समय कपिलवस्तु में जीवन-मृत्यु के चक्र से मुक्त करने वाले शाक्य मुनि ने जन्म लिया है। अत: वे उनके दर्शन के लिए अपने आश्रम से कपिलवस्तु की ओर चल दिए।

कपिलवस्तु में ब्रह्मवेत्ता राजपुरोहितों ने महर्षि असित का स्वागत किया और उन्हें सम्मानपूर्वक राजा के पास ले गए। राजा ने उन्हें सिंहासन पर बैठाया, उनके चरण धोए और विधिवत् पूजा की। राजा ने महर्षि से निवेदन किया— "हे महर्षि! मैं धन्य हूँ। आपके आगमन से मेरा कुल अनुगृहीत हुआ है। हे सौम्य, आज्ञा दीजिए मैं क्या सेवा करूँ? मैं आपका शिष्य हूँ। आप आज्ञा दें।"



राजा के वचन सुनकर ऋषि गद्गद् हो गए और धीर-गंभीर वाणी में बोले— "हे राजन, आप अतिथिप्रिय हैं, धर्माभिलाषी महात्मा हैं। आपने जो कुछ कहा है,

वह आपकी अवस्था और आपके वंश के अनुरूप है। किंतु मेरे आने का प्रयोजन कुछ और ही है। मैंने दिव्य आकाशवाणी सुनी थी कि आपको जो पुत्र प्राप्त हुआ है, वह अवश्य ही बुद्धत्व को प्राप्त करेगा। इसके बाद मैंने स्वयं ध्यानयोग से इसके भविष्य को भी जान लिया है। इसीलिए मैं यहाँ आया हूँ। शाक्य कुल की उस पताका के दर्शन करना चाहता हूँ।"

राजा ने ऋषि असित की सारी बातें ध्यान से सुनीं और प्रसन्न होकर धाय की गोद से शिशु को लेकर उन्हें दिखाया।

महर्षि ने राजकुमार को बड़े विस्मय के साथ देखा। उन्होंने देखा कि उसके चरणों में चक्र के चिह्न हैं, अँगुलियों और हाथ-पैरों पर अन्य शुभ लक्षण अंकित हैं। बालक को देखकर महर्षि की आँखों में आँसू आ गए और उन्होंने दीर्घ नि:श्वास लेकर आकाश की ओर देखा।

महर्षि असित की आँखों में आँसू देखकर राजा का हृदय धड़कने लगा। उनका कंठ अवरुद्ध हो गया। उन्होंने हाथ जोड़कर पूछा— "जिस बालक के शरीर पर दिव्य चिह्न हैं, जिसका जन्म चमत्कारी है और जिसके भविष्य को आप उज्ज्वल बताते हैं, उसे देखकर हे धीर, आपकी आँखों में आँसू क्यों आ गए हैं? हे भगवन, कुमार चिरायु तो है? क्या वह मेरी मृत्यु के बाद मुझे जलांजलि दे सकेगा? हे महर्षि, मुझे शीघ्र बताएँ। मेरा हृदय व्यग्र हो रहा है।"



महर्षि असित ने राजा को समझाया कि ऐसी कोई बात नहीं है। मैंने प्रारंभ में ही कहा था कि तुम्हारा पुत्र बुद्ध होगा। वह शाक्य-कुलभूषण बनेगा। यह निश्चित है। मैं तो इसलिए विकल हूँ कि मेरे जाने का समय आ गया है और जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति के सुलभ उपायों को बताने वाला यह बालक अब उत्पन्न हुआ है। यह कुमार विषयों से विरक्त होकर, राज्य को त्यागकर, अपने तप से तत्वज्ञान प्राप्त करेगा। यह ज्ञानमय सूर्य सांसारिक मोह के अंधकार को अवश्य नष्ट करेगा।

महर्षि असित ने बताया— दुख रूपी समुद्र में डूबते हुए संसार को यह बालक ज्ञान की विशाल नौका से उस पार ले जाएगा। यह धर्म की ऐसी नदी प्रवाहित करेगा, जिसमें प्रज्ञा का जल होगा, शील का तट होगा और समाधि की शीतलता होगी। इसी धर्म-नदी के जल को पीकर तष्णा की पिपासा से व्याकुल यह संसार शांति लाभ करेगा।

जैसे भटके हुए राही को कोई राह बताता है, वैसे ही संसार रूपी जंगल में भटके मनुष्यों को यह मोक्ष का सीधा मार्ग बताएगा। इसलिए हे राजन! आप किसी प्रकार की चिंता न करें, चिंता तो उन्हें करनी चाहिए जो इसके बनाए धर्म को मोहवश या आसक्तिवश नहीं मानेंगे। मैं ही अभागा हूँ कि मैं इसके उपदेशों को सुनने के लिए जीवित नहीं रहूँगा।

महर्षि की इन बातों को सुनकर राजा शुद्धोदन, उनकी पत्नी तथा अन्य सभी संबंधी अत्यंत प्रसन्न हुए। महर्षि भी राजकुमार के भविष्य के बारे में बताकर जैसे वायुमार्ग से आए थे, वैसे ही चले गए। बाद में उन्होंने अपनी बहन के पुत्र को समझाया कि वह बड़ा होकर बुद्ध के मार्ग का ही अनुसरण करे।

ज्योतिषियों तथा महर्षि असित से अपने पुत्र के भविष्य के बारे में सारी बातें सुनने के बाद राजा ने बड़े उत्साह से जन्मोत्सव का आयोजन किया। उसने अपने कुल के अनुरूप बालक का जात-कर्म संस्कार किया। दस दिन पूरे होने पर अपने पुत्र के कल्याण के लिए जप-होम तथा अन्य मंगल कार्य किए। पुत्र की उन्नति के लिए स्वर्ण मंडित सींगों वाली बहुत-सी गायों का दान दिया और शुभ मुहूर्त देखकर प्रसन्नतापूर्वक नगर में प्रवेश किया। पुत्र को लेकर, अनेक सगे- संबंधियों के साथ महारानी हाथी-दाँतों से निर्मित श्वेत पालकी पर सवार होकर नगर में आईं। पुरवासियों ने उनका स्वागत किया। जब रानी ने पुत्र के साथ अपने महल में प्रवेश किया तो राजा शुद्धोदन वैसे ही प्रसन्न हुए जैसे कार्तिकेय के जन्म से शिव प्रसन्न हुए थे।



अंत:पुर विहार

महाराज शुद्धोदन के पुत्र के जन्म का कुछ प्रभाव हुआ कि उनका घर धन-धान्य और हाथी-घोड़ों से संपन्न हो गया। उनके सभी मनोरथ सफल हो गए। उनके जो शत्रु थे, वे मध्यस्थ हो गए, जो मध्यस्थ थे, वे मित्र हो गए और जो मित्र थे वे और भी अधिक प्रिय हो गए। इंद्र ने उचित समय पर वर्षा की और खेत लहलहाने लगे।

महाराज शुद्धोदन के राज्य में धार्मिक जनों ने स्वर्ग जैसे सुंदर उद्यान, देव मंदिर, आश्रम, कुएँ और तालाब बनवाए। राज्य में किसी ने धन के लोभ के लिए धर्माचरण नहीं किया और धर्म के लिए किसी प्रकार की हिंसा नहीं की। इस तरह उनका राज्य चोर, शत्रु आदि के भय से मुक्त, स्वतंत्र और धन-धान्य से संपन्न हो गया। सूर्य-पुत्र मनु के समान इस राजा के राज्य में बालक के जन्मकाल से ही सर्वत्र प्रसन्नता छा गई, पाप नष्ट हो गए और धर्म प्रकाशित हो गया। इस बालक के जन्म से ही राज्य और राजकुल में संपत्ति आई और सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हुईं। इसीलिए राजा ने बालक को सर्वार्थ-सिद्ध कहते हुए उसका नाम 'सिद्धार्थ' रखा।

महारानी माया अपने पुत्र का देवर्षियों जैसा प्रभाव देखकर अतिशय प्रसन्न थीं। पर इस आनंदातिरेक को वह अधिक दिनों तक सह न सकीं और कुछ ही दिनों में स्वर्गवासी हो गईं।

माता के स्वर्गवासी होने पर मौसी गौतमी ने उस बालक का अत्यंत स्नेहपूर्वक लालन-पालन किया। बालक उदयाचल पर उदित सूर्य के समान, वायु प्रेरित अग्नि के समान तथा शुक्ल पक्ष के चंद्रमा के समान धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। सगे-संबंधियों और मित्रों ने बालक को अनेक उपहार दिए। किसी ने बहुमूल्य चंदन के खिलौने दिए तो किसी ने मोतियों की माला दीं। किसी ने सोने के रथ, तो किसी ने सोने-चाँदी की रंग-बिरंगी पुतलियाँ दीं। इस प्रकार बालक सिद्धार्थ विविध प्रकार की बाल-क्रीड़ाएँ करते हुए बड़ा होने लगा।

सिद्धार्थ की कुमारावस्था बीतने पर राजा ने अपने कुल के अनुरूप उसका विधिवत उपनयन संस्कार किया और बालक की शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था की।



बालक सिद्धार्थ अत्यंत मेधावी था। जिन विद्याओं को सामान्य बालक वर्षों में सीखते हैं, उनको उसने कुछ ही समय में सीख लिया। इस प्रकार विद्याभ्यास करते हुए सिद्धार्थ ने किशोरावस्था पूरी की और वह युवावस्था की ओर बढ़ने लगा।



महाराज शुद्धोदन को महर्षि असित द्वारा की गई भविष्यवाणी याद थी कि यह बालक बड़ा होकर मोक्ष-प्राप्ति के लिए वन की ओर प्रस्थान कर सकता है। इसीलिए उन्होंने अंत:पुर में ऐसी व्यवस्था करवाई जिससे सिद्धार्थ की आसक्ति सांसारिक विषयों में बढ़े और वह भोग-विलास में इतना लिप्त हो जाए कि उसे किसी प्रकार का वैराग्य न हो और वह राजमहलों में रहकर भोग-विलास में डूबा रहे।

इसी विचार से राजा शुद्धोदन ने सिद्धार्थ का विवाह करने का निश्चय किया और इसके लिए उपयुक्त कन्या की तलाश शुरू की। अंत में उन्होंने यशोधरा नाम की सुंदर कन्या का चयन किया और फिर बड़े उत्साह से उसका विवाह कुमार के साथ कर दिया।

विवाह के बाद राजकुमार सिद्धार्थ और यशोधरा सुखपूर्वक वैवाहिक जीवन बिताने लगे। महाराज शुद्धोदन ने राजमहल में ऐसी व्यवस्था की थी कि राजकुमार राजमहल में ही रहे, भोग-विलास में तल्लीन रहे और ऐसा कोई दृश्य उसके सामने न आए जिससे उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हो।



राजमहल में राजकुमार सिद्धार्थ सुंदर स्त्रियों के नृत्य, गान तथा वीणा वादन आदि का आनंद लेते रहे। सुंदरियों के साथ राजकुमार ऐसे तन्मय हो गए कि राजमहल से बाहर निकलते ही न थे। राजकुमार को भोग-विलास में तल्लीन देखकर राजा बहुत प्रसन्न थे।, इसलिए उन्होंने और अधिक दान दिए, परंतु राजकुमार सिद्धार्थ विषय सुखों में आसक्त नहीं था। उसने चपल घोड़ो जैसी इंद्रियों को वश में कर लिया था। उसने अपने गुणों से सारे राजपरिवार और पुरवासियों के मन को जीत लिया था।

राजा शुद्धोदन राजकुमार के क्रिया-कलापों से अत्यंत प्रसन्न थे। उन्होंने अपने पुत्र की दीर्घ आयु के लिए ग्रहो की पूजा की तथा गायों और स्वर्ण का दान दिया। राजा स्वयं सदा सत्य का आचरण करते थे, राग-द्वेष से रहित होकर शासन-व्यवस्था चलाते थे तथा प्रजा से अधिक कर नहीं लेते थे। जैसे योगी की इंद्रियाँ उसके अनुकूल रहती हैं, वैसे ही राजा के सदाचरण के कारण सारी प्रजा उनके अनुकूल रहती थी।

यशोधरा के साथ राजकुमार सिद्धार्थ के विवाह के कुछ समय बाद उन्हें चंद्रमा के समान सुंदर मुखवाला पुत्र प्राप्त हुआ। उसका नाम राहुल रखा गया। राजा ने बड़े उत्साह के साथ अपने पौत्र का जन्मोत्सव मनाया। उन्हें अब पूरा विश्वास हो गया कि उनके वंश का विस्तार होगा। जैसे वे अपने पुत्र से प्रेम करते हैं वैसे ही उनका पुत्र भी अपने पुत्र से प्रेम करे, इस अभीष्टपूर्ति के लिए उन्होंने अनेक धार्मिक अनुष्ठान किए।

राजा शुद्धोदन ने अपने पुत्र के लिए राज-काज चलाया, वंशवृद्धि के लिए पुत्र का पालन किया, यश के लिए कुल की रक्षा की और स्वर्ग के लिए वेदों का अध्ययन किया। सामान्यत:- राजा अपनी राज्य-लक्ष्मी की रक्षा के लिए पुत्र की रक्षा करते हैं, परंतु इस राजा ने धर्म-रक्षा की इच्छा से पुत्र की रक्षा की।

संवेग उत्पत्ति



एक बार राजकुमार सिद्धार्थ ने सुना कि राजमहल से बाहर एक सुंदर उद्यान है। वहाँ घने वृक्ष हैं, जिन पर कोयलें कूकती हैं तथा कमलों से भरे सुंदर सरोवर हैं। राजकुमार सिद्धार्थ को वह उद्यान देखने की इच्छा हुई। उसने महाराज से वन-विहार करने के लिए आज्ञा माँगी। राजा ने आज्ञा दे दी। वे चाहते थे कि राजकुमार के मन में किसी प्रकार का वैराग्य-भाव उत्पन्न न हो। इसलिए अनुचरों को ऐसी व्यवस्था करने की आज्ञा दी कि जिधर से राजकुमार निकलें उस मार्ग पर कोई रोगी या पीड़ित व्यक्ति

दिखाई न दे। राज कर्मचारियों ने राजमार्ग से उन सभी व्यक्तियों को शांतिपूर्वक हटा दिया, जो विकलांग थे, वृद्ध थे या रोग-पीड़ित थे। इतना ही नहीं उन्होंने राजमहल से लेकर उद्यान तक का मार्ग अच्छी तरह सजा भी दिया।

राजा की आज्ञा प्राप्त कर अपने कुछ मित्रों को साथ लेकर राजकुमार सिद्धार्थ उद्यान देखने के लिए राजमहल से बाहर निकले। वे स्वर्ण आभूषणों से अलंकृत और चार घोड़ों से युक्त रथ में बैठे थे जो श्वेत पुष्पों और पताकाओं से भली-भाँति सुसज्जित था।

जब नगरवासियों ने सुना कि राजकुमार पुरकानन देखने जा रहे हैं तो राजकुमार के दर्शनों के लिए वे अपने-अपने घरों से बाहर आ गए। उन्होंने मन-ही मन उनका अभिवादन किया और उनके दीर्घ जीवन के लिए शुभकामनाएँ व्यक्त कीं।

राजपथ पर राजकुमार के दर्शनों के लिए जगह-जगह प्रजाजन एकत्रित हो गए थे। स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़कर या झरोखों से झाँककर उनका दर्शन कर रहीं थीं। सुंदर वेशवाले पुरवासियों से भरे इस राजपथ को देखकर राजकुमार सिद्धार्थ बहुत ही प्रसन्न थे। उन्हें लग रहा था, जैसे उनका यह नया जन्म हुआ है।

राजकुमार और पुरवासियों को इस प्रकार प्रसन्न देखकर देवताओं को बड़ी चिंता हुई। वे सोचने लगे कि यदि कुमार में वैराग्य-भाव पैदा नहीं हुआ तो क्या होगा! इतने में सिद्धार्थ को राजपथ पर एक वृद्ध पुरुष दिखाई दिया।



अन्य सभी व्यक्तियों से विलक्षण उस जर्जर शरीरवाले वृद्ध पुरुष को जैसे ही सिद्धार्थ ने देखा, वह चौंका और बड़े ध्यान से उसकी ओर देखने लगा। फिर उसने अपने सारथी से पूछा— "हे सूत, यह कौन है? यह कहाँ से आया है? सफ़ेद बालों वाला यह पुरुष हाथ में लाठी क्यों लिए हुए है? इसकी आँखें भौंहों से कैसे ढँक गईं हैं? इसका शरीर क्यों झुका हुआ है? क्या यह कोई विकृति है? या इसकी यही स्वाभाविक स्थिति है? या यह अनायास ही ऐसा हो गया है?"

राजकुमार के इन प्रश्नों को सुनकर सारथी सोचने लगा, अब मैं क्या कहूँ? राजा की आज्ञा के अनुसार वह इस बारे में कुछ भी बताना नहीं चाहता था किंतु न चाहते हुए भी उसने सभी बातें राजकुमार को बता दीं। उसने राजकुमार से कहा— "हे राजकुमार! रूप और शक्ति का नाश करने वाली यह जरावस्था है; यह बुढ़ापा है; जिसमें स्मृति का नाश हो जाता है; इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं; इसी वृद्धावस्था ने इस पुरुष को तोड़ दिया है; इसने भी बाल्यावस्था में दूध पिया है; सुंदर शरीर प्राप्त कर यौवन का सुख भोगा है और अब कालक्रम से यह बूढ़ा हो गया है।"

सारथी की बातें सुनकर राजकुमार चकित हो गया, क्योंकि उसे इस प्रकार का कोई पूर्व अनुभव नहीं था। उसने फिर बूढ़े की ओर देखा और सारथी से पूछा— "क्या यह दोष मुझे भी होगा? क्यों, मैं भी बूढ़ा हो जाऊँगा?" सारथी ने उत्तर दिया— "हाँ, आयुष्मान! समय आने पर आपको भी वृद्धावस्था अवश्य प्राप्त होगी।"

सारथी का उत्तर सुनकर राजकुमार उद्विग्न हो उठा। उसने दीर्घ नि:श्वास लिया, सिर हिलाया और बड़े ध्यान से पुन: उस पुरुष को देखा, फिर चारों ओर प्रसन्नचित्त जनता की भीड़ को देखकर वह सोचने लगा कि ये लोग कैसे हैं। जो स्मरणशक्ति और सारे पराक्रमों को समाप्त कर देने वाली इस वृद्धावस्था को देखकर भी अनुद्विग्न बने रहते हैं? उसने फिर सारथी से कहा— "हे सूत! चलो, घर चलें, अपने घोड़ों को मोड़ दो। मन में जब बुढ़ापे का भाव भर गया हो तो इस उद्यान में मेरा मन कैसे रम सकता है!"



राजकुमार की आज्ञा पाकर सारथी ने रथ को राजभवन की ओर मोड़ दिया। थोड़े ही समय में वह राजभवन आ गया। राजकुमार अब भी बुढ़ापे के बारे मे सोच रहा था। वह रथ से उतरकर अपने भवन में गया और तरह-तरह से इसी विषय में सोचता रहा, परंतु उसे किसी प्रकार शांति का अनुभव न हुआ। वह अपने पिता के पास आया। उनसे पुन: उद्यान-भ्रमण की आज्ञा ली और उसी राजपथ पर पुन: उसी प्रकार बाहर आ गया।

राजकुमार सिद्धार्थ का रथ जैसे ही उद्यान की ओर अग्रसर हुआ उसे एक रोगी दिखाई पड़ा, उसका पेट बढ़ा हुआ था, कंधे झुके थे और वह लंबी-लंबी साँसें ले रहा था। सिद्धार्थ ने उसी समय रथ को रुकवाया और सारथी से पूछा— "हे सूत, यह दुबला-पतला व्यक्ति कौन है, जो दूसरों का सहारा लेकर चल रहा है और कराहता हुआ 'हाय माँ, 'हाय माँ' कह रहा है?"

सारथी ने उत्तर दिया— "हे सौम्य! यह व्यक्ति बीमार है। रोग से पीड़ित है और असमर्थ हो गया है।" राजकुमार ने दया भरी दृष्टि से उस रोगी को देखा और फिर सारथी से पूछा— "क्यों सारथी! यह रोग इसी व्यक्ति को हुआ है या किसी को भी हो सकता है?" सारथी ने बताया कि रोग-भय तो सभी प्राणियों को लगा रहता है। कोई भी रोग से पीड़ित हो सकता है, परंतु लोग यह जानते हुए भी परवाह नहीं करते।

सारथी का उत्तर सुनकर राजकुमार का मन और भी बेचैन हो उठा। उसका हृदय काँपने लगा, फिर करुण स्वर से वह बोला— "अरे! ये मनुष्य कैसे अज्ञानी हैं जो रोग-भय से ग्रस्त होने के बाद भी निश्चिंत रहते हैं!" उसने सारथी से कहा— "हे सूत! अब तुम रथ को घर की ओर ले चलो, लौट चलो, मुझसे यह रोग-भय सहा नहीं जाता।

राजकुमार का आदेश पाकर सारथी ने रथ को महल की ओर मोड़ दिया। राजकुमार का हृदय पहले बुढ़ापे के भय से और अब रोग के भय से दुखी था। वह शीघ्र महल में लौट आया और कमरे में जाकर विचारों में डूब गया।

महाराज शुद्धोदन ने इस प्रकार जब दो बार राजकुमार को दुखी मन से लौटा हुआ देखा तो उन्होंने इसका कारण जानना चाहा। उन्होंने सारथी को बुलाया और उससे सारा वृत्तांत सुना। राजा को जब यह ज्ञात हुआ कि राजकुमार जरा और रोग से ग्रस्त व्यक्तियों को देखकर बहुत व्याकुल हो गए हैं और घर लौट आए हैं, तो उन्हें लगा जैसे राजकुमार ने उन्हें त्याग दिया है। उन्होंने जिस भय से राजमार्ग से वृद्ध, रोगी तथा असुंदर लोगों को हटाने का आदेश दिया था, वहीं भय कैसे उपस्थित हो गया? उन्हें अपने कर्मचारियों और अधिकारियों पर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने राजकुमार की यात्रा से पूर्व सारे राजमार्ग को सुसज्जित करने तथा रोगी, वृद्ध आदि लोगों को हटाने का आदेश दिया था। परंतु राजा ने अब इसे अपनी नियति मान लिया और उन अधिकारियों को दंडित नहीं किया।



उन्होंने अपने मंत्रियों को बुलाकर इस विषय पर विस्तार से विचार-विमर्श किया। राजकुमार के मन को बदलने के लिए उन्होंने और अधिक भोग-विलास तथा आमोद-प्रमोद की अच्छी व्यवस्था अंत:पुर में ही कर दी। राजा ने सोचा था, इंद्रियाँ स्वभावत: चंचल होती हैं, अत: राजकुमार भोग-विलास और आमोद-प्रमोद में सब कुछ भूल सकता है। हो सकता है, वह इस प्रकार विषयों में आसक्त होकर यहीं रहे और हमें छोड़कर कहीं अन्यत्र न जाए।

परंतु राजमहल के आमोद-प्रमोद के विशेष आयोजन का भी राजकुमार के मन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। इस पर राजा ने यह सोचकर कि नगर-दर्शन से राजकुमार का मन बदल सकता है, राजकुमार के लिए पुन: नगर-दर्शन की विशेष व्यवस्था की। उन्होंने पूरे नगर को भली-भाँति सुसज्जित करवाया। सर्वत्र विविध कलाओं में निपुण सुंदरियों को नियुक्त किया और ऐसी व्यवस्था की जिससे राजकुमार का मन किसी भी प्रकार उद्विग्न न हो। उन्होंने राजकुमार के रथ और उसके सारथी को भी बदल दिया।

सारी व्यवस्था करने के बाद महाराज शुद्धोदन ने पुन: राजकुमार सिद्धार्थ को नगर-दर्शन के लिए प्रेरित किया और अनेक युवक-युवतियों के साथ नगर दर्शन के लिए बाहर भेज दिया।

नगर के सुसज्जित मार्गों और सुंदर युवक-युवतियों को देखकर राजकुमार सिद्धार्थ बहुत प्रसन्न थे। प्रसन्नतापूर्वक नगर-दर्शन करते हुए जब वे आगे बढ़ रहे थे, तभी उन्हें किसी मृत व्यक्ति की शव-यात्रा दिखाई दी।

राजकुमार ने जब इस सुंदर वातावरण में शव-यात्रा देखी और उसके साथ रोते–बिलखते लोगों को देखा तो वह चौंक गया। उसने रथ रुकवाया और सारथी से पूछा— "हे सूत! यह क्या है, जिसे चार आदमी अपने कंधों पर उठाकर ले जा रहे हैं, उसके पीछे आने वाले लोग क्यों रो रहे हैं? जिसे लोग उठाकर ले जा रहे हैं, उसे तो अच्छी तरह से सजाया है, फिर भी ये लोग रो क्यों रहे हैं? मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है। मुझे ठीक-ठीक बताइए, यह सब क्या है?"



यद्यपि राजा ने सारथी को समझा दिया था कि वह ऐसी कोई बात राजकुमार को न बताए जिससे उसका मन बेचैन हो परंतु सारथी राजकुमार का आग्रह नहीं टाल सका। उसने राजकुमार को बताया कि यह ऐसा व्यक्ति है जिसकी चेतना, बुद्धि, प्राण, इंद्रिय गुण आदि समाप्त हो चुके हैं। अब यह लकड़ी के टुकड़े के समान है। जिसे बड़े लाड़-प्यार से पाला-पोसा गया था, उसे ही आज ये लोग रो-धोकर हमेशा के लिए छोड़ने जा रहे हैं।

सारथी की ये बातें सुनकर राजकुमार अत्यंत व्यग्र हो गया। उसने पहली बार मृत व्यक्ति के दर्शन किए थे। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। उसने पुन: सारथी से पूछा— "क्या यह स्थिति सभी की होती है या इसी की है? क्या यह इसी का अंत है या सभी का यही अंत होता है?"

सारथी ने उत्तर दिया, "हाँ, राजकुमार सभी प्राणियों की यही अंतिम गति है,क्योंकि सभी नाशवान हैं; चाहे कोई व्यक्ति उत्तम हो; मध्यम हो या अधम हो; अंत सभी का है और अंत सबका एक-सा ही है।"

सारथी की बातें सुनकर राजकुमार यद्यपि अधीर तो नहीं हुआ, परंतु मृत्यु की प्रथम प्रतीति के कारण वह उसके विषय में सोचने लगा। थोड़ी देर विचारों में डूबे रहने के बाद उसने गंभीर स्वर में कहा— "सभी प्राणियों की मृत्यु निश्चित है फिर भी लोगों को डर नहीं लगता। मनुष्य क्यों सावधान नहीं होते? लगता है, लोगों का मन बड़ा कठोर है, तभी तो मृत्यु मार्ग पर चलते हुए भी, वे उसे भूले रहते हैं। हे सारथी! लौट चलो, चलो घर चलें। यह समय आमोद-प्रमोद का नहीं है। मृत्यु को जानकर भी भला कोई बुद्धिमान व्यक्ति कैसे अपने आपको आमोद-प्रमोद में डुबो सकता है।" सारथी को घर लौटने की आज्ञा देकर राजकुमार संसार की असारता के विषय में सोचता हुआ... विचारों में डूब गया।

यद्यपि राजकुमार ने सारथी से रथ को राजमहल ले चलने के लिए कहा था, परंतु उसे राजा की आज्ञा याद थी, अत: वह राजकुमार के रथ को राजमहल न ले जाकर 'पद्म खंड' नाम के उद्यान की ओर ले गया। राजा की आज्ञा के अनुसार इस उद्यान को विशेष रूप से सुसज्जित किया गया था। धीरे-धीरे राजकुमार का रथ वन-प्रांतर की ओर अग्रसर होने लगा। राजकुमार ने विविध प्रकार के पुष्पों से युक्त छोटे-छोटे वृक्षों को देखा, जिन पर मतवाली कोयलें कूक रहीं थीं। पास ही सुंदर पुष्करिणी थी, जिसमें अनेक कमल खिले हुए थे। सारा उद्यान नंदन वन जैसा सुंदर लग रहा था।, परंतु इस सुंदर वन-प्रांतर में भी राजकुमार का मन नहीं लग रहा था।

पद्म-खंड— उद्यान में राजा शुद्धोदन द्वारा नियुक्त नवयुवतियों ने जब सुना कि राजकुमार सिद्धार्थ उपवन में प्रवेश कर चुके हैं तो उन्होंने द्वारा के पास ही उनका स्वागत किया। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक राजकुमार को रथ से उतारा और प्रेमभरी आँखों से निहारा। उन्हें ऐसा लग रहा था कि जैसे स्वयं कामदेव उनके सामने आ गया हो। राजकुमार के सुंदर रूप को निहार कर वे इतनी मुग्ध हो गईं कि न कुछ बोल सकीं, न हँस सकीं, बस देखती ही रहीं।



इस प्रकार प्रेम-विह्वल स्त्रियों को कुछ न करते देखकर कुमार के मित्र तथा राजपुरोहित के पुत्र उदायी ने सुंदरियों से कहा कि आप सभी रूप और यौवन से संपन्न हैं, सभी कलाओं में निपुण हैं, अत: अपने हाव-भाव से राजकुमार को आमोद-प्रमोद में तल्लीन कीजिए। उनके मन के वैराग्य-भाव को दूर कीजिए।

उदायी की ये बातें सुनकर सभी स्त्रियाँ राजकुमार को आकर्षित करने के लिए प्रयत्न करने लगीं। उन्होंने राजकुमार को निकट से निहारा और अपने हाव-भाव से उन्हें आकर्षित करने का प्रयास किया। सुरम्य वातावरण में सुंदर स्त्रियों के बीच राजकुमार प्रसन्न तो दिखा परंतु वह जितेंद्रिय था, अत: अनासक्त भाव से सब कुछ देखता रहा। मन-ही-मन सोचता रहा कि क्या ये स्त्रियाँ यौवन की अस्थिरता नहीं जानतीं? क्या ये नहीं जानतीं कि जिस रूप के कारण ये उन्मत्त हैं, उसे बुढ़ापा शीघ्र ही समाप्त कर देगा। अवश्य ही इन स्त्रियों ने रोग नहीं देखा, तभी तो ये इस प्रकार प्रसन्न हैं। इन्हें मृत्यु का भी भय नहीं है, तभी तो इस प्रकार हँस रहीं हैं।

नवयुवतियों के बीच भी राजकुमार को ध्यान-मग्न देखकर साथ में आए उनके मित्र उदायी ने उन्हें समझाते हुए कहा— "हे मित्र! यह क्या है? आप क्यों इतने उदासीन हैं? आप तो बलवान हैं, सुंदर हैं, युवक हैं, फिर भोग-विलास का तिरस्कार क्यों कर रहे हैं?"

उदायी की ये बातें सुनकर राजकुमार ने धीर-गंभीर वाणी में उत्तर दिया— "हे मित्र! आप जो कह रहे हैं, वह ठीक ही है, परंतु मैं भी आपसे कुछ कहना चाहता हूँ। मैं विषयों की उपेक्षा नहीं करता और मैं यह जानता हूँ कि सारा संसार विषयों की उपेक्षा नहीं करता। मैं यह भी जानता हूँ कि सारा संसार विषयों में ही डूबा हुआ है। किंतु इस जगत को अनित्य जानकर, अब मेरा मन इनमें रम नहीं रहा। जरा, व्याधि और मृत्यु न होती तो मेरा मन भी इनमें अनुरक्त होता, परंतु मैं जानता हूँ, इस यौवन और सौंदर्य को बुढ़ापा समाप्त कर देगा। हे मित्र! ऐसे क्षणभंगुर यौवन में अनुराग अज्ञान के कारण ही हो सकता है।"

राजकुमार सिद्धार्थ जब अपने मित्र से वैराग्य उत्पन्न करने वाली बातें कर रहा था, तभी सूर्य अस्त होने लगा। सभी नवयुवतियाँ नगर की ओर लौटने लगीं और सारे उद्यान और नगर की शोभा अंधकार की चादर में सिमटने लगी।



इस समय राजकुमार सिद्धार्थ को बोध हुआ कि इस जगत में सब कुछ क्षणिक है, सब कुछ अनित्य है। जगत की अनित्यता के विषय में सोचते हुए वह अपने राजभवन की ओर चल पड़ा। थोड़े समय में राजभवन पहुँचकर वह सीधे अपने महल में गया और संसार की नश्वरता के विषय में और विचार करता रहा।

महाराज शुद्धोदन ने जब सुना कि राजकुमार सभी विषयों से विमुख होकर लौट आया है, तो उन्हें बहुत दुख हुआ। जैसे किसी हाथी के हृदय में बाण लग जाने से वह रातभर सो नहीं पाता वैसे ही महाराज भी रातभर सो नहीं सके। उन्होंने अपने मंत्रियों को बुलाया और उनके साथ मंत्रणा करते रहे कि क्या उपाय किए जाएँ, जिससे राजकुमार का मन बदले, उसका वैराग्य समाप्त हो और विषयों के प्रति आसक्ति जागे।

प्रश्न

1. सिद्धार्थ के बारे में महर्षि असित की क्या भविष्यवाणी थी? संक्षेप में बताइए।
2. आप कैसे कह सकते हैं कि बालक सिद्धार्थ विशेष मेधावी था?
3. महाराज शुद्धोदन सिद्धार्थ की सुख-सुविधाओं की व्यवस्था के लिए क्यों विशेष प्रयत्नशील रहते थे?
4. राजकुमार सिद्धार्थ के मन में संवेग की उत्पत्ति के क्या कारण थे?



अध्याय 2

अभिनिष्क्रमण

गृह-त्याग

शाक्त पुत्र सिद्धार्थ को विविध प्रकार के आमोद-प्रमोद तथा भोग-विलासों द्वारा लुभाने का प्रयत्न किया गया था, परंतु उसे उनमें न शांति मिली न सुख। जैसे कोई सिंह विषाक्त बाण के लग जाने पर बहुत बेचैन हो जाता है वैसे ही राजकुमार बेचैन हो गया था, इसलिए उसके मन में शांति प्राप्ति के लिए, वन की ओर जाने की इच्छा हुई। उसने अपने कुछ घनिष्ठ मित्रों को साथ लिया और वन जाने के लिए महाराज से आज्ञा माँगी।

आज्ञा प्राप्त कर राजकुमार सिद्धार्थ अपने मित्रों के साथ राजभवन से निकला। सुंदर घोड़ों पर सवार होकर वह सुदूर वन-प्रांतर की ओर चल पड़ा। रास्ते में उसने जुते हुए खेतों को देखा, खेतों में हल से उखड़ी हुई घास तथा अन्य खरपतवार देखे। हल की जुताई से मरे हुए कीड़े-मकोड़ों को देखकर राजकुमार का हृदय द्रवित हो गया। उसका मन शोक से भर गया। वह विह्वल होकर घोड़े की पीठ से उतर गया और धरती पर इधर-उधर घूमने लगा। राजकुमार का मन जन्म और मृत्यु के विषय में सोचते-सोचते बहुत ही व्याकुल हो गया।

मन को एकाग्र करने की इच्छा से राजकुमार ने अपने मित्रों को वहीं रोक दिया और स्वयं सामने जामुन के पेड़ के नीचे बैठकर ध्यान करने लगा। थोड़ी देर ध्यान करने से वह कुछ स्थिर हुआ। वह राग-द्वेष से मुक्त होकर तर्कसंगत विचारों में डूब गया। धीरे-धीरे उसने मानसिक समाधि प्राप्त की और उसे शांति और सुख का अनुभव हुआ।



धीरे-धीरे सिद्धार्थ के मन में सांसारिक जीवन की गति स्पष्ट होने लगी। उसे लगा, लोग अज्ञानवश ही जरा, व्याधि और मृत्यु की उपेक्षा कर रहे हैं। वह सोचने लगा, क्या मैं इन्हीं की तरह इनकी उपेक्षा करूँ? नहीं, मेरे लिए यह उचित नहीं होगा। इस प्रकार के विचारों से उसका अहंकार समाप्त हो गया। अब वह हर्ष, संताप और संदेह से मुक्त था। इस समय वह न निद्रा में था, न तंद्रा में, अब उसके मन में किसी के लिए न राग था और ना द्वेष।

इस मानसिक समाधि से सिद्धार्थ की बुद्धि जब निर्मल हो गई तो उसे भिक्षु वेश में एक पुरुष दिखाई दिया। वह और किसी को नहीं दिखाई पड़ रहा था। सिद्धार्थ ने उस पुरुष से पूछा कि आप कौन हैं? तो उसने बताया— "मैं जन्म-मृत्यु से डरा हुआ एक संन्यासी हूँ; मैं मोक्ष की खोज मे हूँ; अपने-पराए के प्रति समान भाव रखते हुए, अब मैं राग-द्वेष से मुक्त हो गया हूँ; अत: अब विचरण ही करता रहता हूँ; कभी किसी वन-प्रांतर में रहता हूँ; सभी आशाओं से मुक्त; संग्रहशीलता से मुक्त; अनायास जो कुछ मिल जाए उसे ही खाकर मैं मोक्ष की खोज में घूमता रहता हूँ।" कभी किसी पेड़ के नीचे; कभी किसी निर्जन देवालय में; कभी किसी पर्वत पर यह कहकर वह संयासी राजकुमार के देखते-देखते अंतर्धान हो गया।

उस संन्यासी के अदृश्य हो जाने के बाद राजकुमार सिद्धार्थ को बहुत ही प्रसन्नता हुई। उसे विस्मय भी हुआ, उसे धर्म का ज्ञान प्राप्त हो गया था, इसलिए उसने अब अपने मन में घर त्यागने का संकल्प कर लिया। जितेंद्रिय राजकुमार ने वहीं से वन जाने का प्रयत्न नहीं किया, वरन वह प्रसन्नतापूर्वक अपने मित्रों को साथ लेकर नगर की ओर चल पड़ा।

राजकुमार जब अपने राजभवन की ओर जा रहा था तो राजमार्ग में किसी राजकन्या ने उसे देखा और हाथ जोड़कर कहा— "हे विशाल-नयन! आप जिस स्त्री के पति हैं, वह निश्चित ही निवृत्त है, सुखी है।" राजकुमार को इस 'निवृत्त' शब्द के श्रवण मात्र से परम शांति का अनुभव हुआ और वह निर्वाण के विषय में सोचने लगा।

राजकुमार इसी भाव के साथ सीधा राजसभा में पहुँचा, जहाँ मंत्रियों के बीच राजा वैसे ही सुशोभित हो रहे थे, जैसे देवताओं की सभा में इंद्र।

राजकुमार ने हाथ जोड़कर पहले राजा को प्रणाम किया और फिर सविनय निवेदन किया— "हे नरदेव, मैं अब मोक्ष-प्राप्ति के लिए संन्यास लेना चाहता हूँ, आप कृपाकर मुझे आज्ञा प्रदान करें, क्योंकि यह निश्चित है कि एक न एक दिन मेरा और आपका वियोग होगा, अत: अभी जाने की आज्ञा प्रदान कर मुझे उपकृत करें।"



राजकुमार के वचनों को सुनकर राजा उसी तरह काँप गए, जिस तरह कोई वृक्ष हाथी की रगड़ से काँप जाता है। उनका गला भर आया, उन्होंने कुमार का हाथ पकड़ कर कहा— "हे तात! इस तरह के विचारों को तुम त्याग दो; अभी संन्यास लेने का समय तो मेरा है; तुम तो पुरुषार्थ करो; राजलक्ष्मी का भोग करो; गृहस्थ धर्म

का पालन करो और युवावस्था में सुख भोगने के बाद तुम तपोवन में प्रवेश करना। यह तुम्हारे संन्यास ग्रहण करने का समय नहीं है।"



राजा ने तरह-तरह के तर्क देकर राजकुमार को समझाया, परंतु राजकुमार ने उनके सभी तर्कों को निरस्त कर दिया। अंत में कहा— "यदि आप मेरी चार बातों को पूरा कर दें तो मैं आपको वचन देता हूँ कि मैं तपोवन नहीं जाऊँगा। वे चार बातें हैं—

मेरी मृत्यु न हो।
मैं सदा रोगमुक्त रहूँ।
मुझे कभी बुढ़ापा न आए और
मेरी संपत्ति सदा बनी रहे।"



राजकुमार सिद्धार्थ की इन असंभव बातों को सुनकर महाराज शुद्धोदन चकित हो गए, उन्होंने उसे बहुत समझाया और कहा— "हे पुत्र! ऐसी ऊटपटांग बातें मत करो। मेरा हृदय फटा जा रहा है। देखो, तर्कहीन बातें करने वाला व्यक्ति सदा उपहास का पात्र होता है, अत: तुम इस विचार को छोड़ दो।"

परंतु राजकुमार ने उनकी एक भी बात न मानी और अंत में कहा— "न सही मेरी बातों में कोई तर्क, किंतु मुझे लगता है, जिस घर में आग लग गई हो, उससे

निकल जाना ही श्रेयस्कर है। जब मेरा आपका वियोग निश्चित है, तो धर्म पालन के लिए उस वियोग को मैं अभी क्यों न चुन लूँ, नहीं तो मृत्यु तो अलग करेगी ही।"

राजकुमार की इस प्रकार की निश्चय भरी बातें सुनकर मंत्रियों ने भी उसे बहुत समझाया। राजा ने आँखों में आँसू भरकर उसे रोकना चाहा, परंतु उसने किसी की एक भी बात न मानी और अपना निर्णय सुनाकर अपने महल की ओर चल दिया।

जैसे ही राजकुमार अपने महल में पहुँचा, उसे सुंदर स्त्रियों ने घेर लिया। उस तेजस्वी राजकुमार को देखकर वे मोहित हो गईं। पर राजकुमार पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह अपने कक्ष में गया और सोने के आसन पर बैठ गया। अब भी वह परमार्थ सुख की प्राप्ति के लिए घर से निकल जाने के विचारों में डूबा हुआ था। विचार करते-करते राजकुमार का मन सब कुछ छोड़कर चलने के लिए उतावला हो गया। वह नि:शंक भाव से उठा और झट से अपने कक्ष से बाहर आ गया।

वहाँ राजकुमार ने सोते हुए अश्व-रक्षक छंदक को जगाया और कहा— "हे छंदक! तुम शीघ्र कंथक (घोड़े) को ले आओ। मैं अभी अमृत-प्राप्ति के लिए जाना चाहता हूँ। आज मेरे हृदय में संतोष है, बुद्धि में दृढ़ निश्चय है और मेरा लक्ष्य मेरे सामने है। लगता है, मेरे जाने का समय आ गया है।"

अश्व-रक्षक छंदक राजा की इच्छा तो जानता था, लेकिन उसने चुपचाप राजकुमार की आज्ञा का पालन किया। वह शीघ्र ही अश्वशाला में गया और वहाँ से वेगवान अश्व कंथक को ले आया।

राजकुमार ने घोड़े के शरीर पर हाथ फेरा और कहा— "हे तुरंग श्रेष्ठ! तुम पर सवार होकर हमारे राजा ने अनेक शत्रुओं को जीता है। अब तुम ऐसा करो जिससे मुझे अमृत पद की प्राप्ति हो। इसका लाभ तुम्हें भी होगा, तुम्हें पुण्य मिलेगा। इसलिए तुम मेरे हित के लिए और जगत के कल्याण के लिए मुझे शीघ्र ही यहाँ से निकाल ले चलो।"



इस प्रकार उस श्वेत अश्व हो समझा कर राजकुमार उस पर सवार हो गया। ऐसा लगता था जैसे कि शरदकालीन मेघ पर सूर्य सवार हो गया हो। वह घोड़ा इस तरह चलने लगा, जिससे किसी प्रकार की आवाज़ न हो, कोई परिजन जागे नहीं। बिना हिनहिनाए वह शीघ्र राजभवन के द्वार पर आ गया। राजमहल के द्वार अपने आप खुल गए। सभी प्रहरी सो गए और राजकुमार अपने दृढ़ संकल्प के साथ,

अपने हितैषी पिता, प्रिय, पुत्र अनुरक्त गृहलक्ष्मी और अन्य प्रियजनों को त्याग कर नगर से बाहर निकल गया।



राजकुमार सिद्धार्थ ने एक बार नगर की ओर मुड़कर देखा और घोषणा की— "जन्म और मृत्यु के पार देखे बिना मैं अब इस कपिलवस्तु नगर में प्रवेश नहीं करूँगा।"

सूर्य के घोड़ों के समान यह घोड़ा भी किसी दैवी प्रेरणा से द्रुत गति से चला जा रहा था। उदीयमान सूर्य की किरणों से जब तारे मलिन होने लगे, तब तक वह राजकुमार को लेकर नगर से कई योजन दूर निकल आया था।

छंदक की वापसी

थोड़े समय बाद सामने भार्गव ऋषि का आश्रम दिखाई दिया। आश्रम के पास निश्‍चिंत भाव से अभी अनेक हिरण सोए हुए थे। वृक्षों पर पक्षी शांत बैठे थे। आश्रम की यह शोभा देखकर राजकुमार प्रसन्न हुआ और उसे लगा कि वह कृतार्थ हो गया। उसकी सारी थकान जाती रही। आश्रम के द्वार पर पहुँचकर तपस्या को सम्मान देने के लिए वह विनम्रभाव से घोड़े की पीठ से उतर गया।



घोड़े से उतरकर राजकुमार ने पहले अपने घोड़े को सहलाया, उसे पुचकारा और कहा— "हे वत्स, तुमने मुझे पार उतार दिया है।" फिर स्निग्ध दृष्टि से छंदक को निहारते हुए कहा— "हे सौम्य, गरुड़ के समान द्रुतगति से चलने वाले इस घोड़े के साथ-साथ दौड़कर तुमने जो मुझमें भक्ति दिखाई है, उसने मेरा मन जीत लिया है।

मैं तुमसे पूरी तरह संतुष्ट हूँ, क्योंकि तुम्हारे मन में इसके लिए किसी फल की कामना नहीं है। मैं और क्या कहूँ! तुमने मेरा प्रिय कार्य किया है। अब तुम घोड़े को लेकर लौट जाओ। मुझे मेरा गंतव्य मिल गया है।

इतना कहकर राजकुमार ने प्रत्युपकार के रूप में अपने सारे आभूषण उतारकर छंदक को दे दिए, उन्होंने दीपक के समान चमकने वाली एक मणि अपने मुकुट से निकाल कर उसे दी और कहा— "हे छंदक, राजा को यह मणि देकर मेरी ओर से बारंबार नमस्कार करना और उनके शोक-निवारण के लिए मेरा यह संदेश कहना— हे तात! मैं स्वर्ग की तृष्णा से या वैराग्य भाव से या क्रोध से तपोवन नहीं आया हूँ। मैं जरा और मरण के नाश का मार्ग खोजने के लिए यहाँ आया हूँ। शोक-त्याग के लिए निकलने वाले व्यक्ति के लिए किसी को शोक नहीं करना चाहिए। मैं अपने पूर्वजों की परंपरा का ही अनुसरण कर रहा हूँ, अत: आप मेरे लिए शोक न करें। मृत्यु रूपी शत्रु के रहते हुए जीवन का क्या भरोसा! इसीलिए युवावस्था में ही मैंने कल्याण का मार्ग चुन लिया है।"

राजकुमार ने फिर छंदक से कहा— "हे सौम्य, इसी तरह की और भी बातें करके तुम राजा को समझाना। तुम मेरी बुराई भी करना, क्योंकि दोष-दर्शन के कारण स्नेह छूट जाता है और स्नेह समाप्त होने से शोक समाप्त हो जाता है।"

राजकुमार की ये बातें सुनकर छंदक बहुत व्याकुल हो गया। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। उसने हाथ जोड़कर भरे गले से कहा— "हे स्वामी, स्वजनों को दुख देने वाले आपके इन विचारों से मेरा मन दलदल में फँसे हाथी के समान व्यथित हो रहा है। आपके इस निर्णय से किसे कष्ट नहीं होगा? कहाँ कोमल शय्या पर सोने योग्य यह शरीर और कहाँ यह कंटकाकीर्ण कठोर तपोभूमि! न जाने मैं आपको यहाँ तक कैसे ले आया? यदि मैं अपने अधीन होता तो आपके निश्चय को जानकर मैं इस अश्व को कभी न लाता। आप अपने वृद्ध पिता को इस प्रकार मत छोड़िए। आप अपनी दूसरी माता (मौसी) को भी मत छोड़िए। देवी यशोधरा का त्याग मत कीजिए। अपने अबोध पुत्र को मत त्यागिए। यदि आपने अपने स्वजनों और राज्य को त्यागने का दृढ़ निश्चय कर ही लिया है, तो भी आप मुझे न त्यागिए। आपके चरणों में ही मेरी गति है, जैसे सुमंत राम को वन में छोड़ गए थे, वैसे ही मैं आपको वन में छोड़कर नगर नहीं लौट सकता।"



उसने आगे कहा— "हे तात, आपके बिना यदि मैं नगर लौट जाऊँगा तो महाराज मुझसे क्या कहेंगे? अंत:पुर की रानियाँ क्या कहेंगी? मैं यदि झूठ-मूठ ही



आपकी बुराई करूँगा, तो भी उस पर कौन विश्वास करेगा? इसलिए हे दयालु! आप करुणाकर मुझ पर प्रसन्न हों और घर लौट चलें।"

छंदक की इन बातों को सुनकर कुमार ने बड़े धैर्य और शांति के साथ उसे पुन: समझाया और कहा— "छंदक, स्नेह के कारण चाहे हम स्वयं स्वजनों को न छोड़ें, फिर भी वे एक न एक दिन मृत्यु के कारण छूट ही जाते हैं। जिस माँ ने मुझे कष्टपूर्वक गर्भ मे धारण किया, वह माँ अब कहाँ है और मैं कहाँ हूँ? जैसे रात को पक्षी एक वृक्ष पर एकत्र होते हैं और प्रात:काल फिर अलग हो जाते हैं। उसी तरह सब लोग मिलते हैं और फिर विलग हो जाते हैं, इसलिए तुम संताप छोड़ो और नगर लौट जाओ, यदि तुम्हारा मन न माने तो फिर तुम मेरे पास चले आना, अभी तो तुम कपिलवस्तु लौट जाओ और मेरी प्रतीक्षा कर रहे लोगों को समझाओ। तुम उनसे कहना कि मेरे प्रति मोह को त्योग दें। मैं जन्म-मृत्यु का रहस्य जानकर अवश्य ही कपिलवस्तु लौटूँगा और यदि मुझे लक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ तो मैं जीवित नहीं रहूँगा।"

राजकुमार सिद्धार्थ के वचनों को सुनकर कंथक अश्व की आँखों से भी आँसू बहने लगे और वह जीभ से अपने स्वामी के चरणों को चाटने लगा। राजकुमार ने भी उसे सहलाते हुए कहा है— "हे कंथक! रोओ मत! तुमने आज अच्छा कार्य किया है, उसका सुफल तुम्हें अवश्य मिलेगा।" ऐसा कहकर राजकुमार ने छंदक के हाथ से स्वर्ण जड़ित कृपाल ले ली, उससे अपने केश काटे और मुकुट फेंक दिया।

राजकुमार ने अपने सारे अलंकारों का त्याग किया और स्वर्णिम वस्त्रों को त्यागकर वन-वस्त्र धारण करने की इच्छा की। तभी एक शिकारी प्रकट हो गया जो काषाय वस्त्र धारण किए हुए था। सिद्धार्थ ने उस शिकारी से कहा— "हे सौम्य! इस हिंसक धनुष के साथ ऋषियों के काषाय वस्त्र आपको शोभा नहीं देते, यदि आपको इन वस्त्रों से मोह न हो तो आप मेरे शुभ वस्त्रों को ले लें और अपने ये काषाय वस्त्र मुझे दे दें।"

सिद्धार्थ की बातें सुनकर शिकारी ने कहा— "यदि आपको मेरे काषाय वस्त्र अच्छे लगते हैं, तो ले लीजिए और मुझे अपने वस्त्र दे दीजिए।" दोनों ने परस्पर वस्त्र बदले। इसके बाद शिकारी चला गया। यह सब देखकर छंदक आश्चर्यचकित रह गया। छंदक ने काषाय वस्त्रधारी राजकुमार को विधिवत प्रणाम किया। काषायधारी सिद्धार्थ ने उसे प्रेमपूर्वक विदा किया और स्वयं अकेला आश्रम की ओर चल पड़ा।



राज्य से विरक्त अपने स्वामी को इस प्रकार जाते देखकर छंदक फूट-फूट कर रोने लगा और भूमि पर गिर पड़ा। थोड़ी देर बाद होश आने पर वह फिर उठा और

कंथक से लिपट कर रोने लगा। धीरे-धीरे साहस बटोरकर वह कपिलवस्तु की ओर चलने लगा। कभी रोता, कभी बिलखता, कभी गिरता और कभी उठता, वह धीरे-धीरे कपिलवस्तु की ओर चलता गया।

तपोवन प्रवेश

जाते हुए छंदक को विदाकर जब सिद्धार्थ ने किसी सिद्धयोगी की तरह आश्रम में प्रवेश किया तो उनके स्वरूप से सारा आश्रम अभिभूत हो गया। उनके शरीर पर कोई राजचिह्न नहीं था, फिर भी सभी आश्रमवासियों की दृष्टि उनकी ओर अनायास ही आकृष्ट हो गई। जो किसान अपनी स्त्रियों के साथ खेत की ओर जा रहे थे, वे सिद्धार्थ की ओर देखते रह गए। जो ब्राह्मण-कुमार हाथों में समिधा और फूल लिए हुए लौट रहे थे एकटक कुमार की ओर देखते रह गए और अपने मठ की ओर जाना भूल गए। काषाय वेशधारी सिद्धार्थ को देखकर आश्रम के मोर प्रसन्न होकर बोलने लगे। चंचल नेत्र वाले मृग चरना भूलकर उनके सामने आकर खड़े हो गए और गायों के थनों से स्वत: दूध चूने लगा।

आश्रम के ऋषि-मुनियों ने जब दूर से ही सिद्धार्थ को देखा तो चकित हो गए और कहने लगे— "क्या यह आठवाँ वसु है? या अश्विनी-कुमारो में से ही कोई एक है, जो स्वर्ग से पृथ्वी पर आ गया है।" इस तरह इंद्र के समान शरीर वाले इस कुमार ने सहसा सूर्य के समान अपने प्रकाश से सभी के मन को प्रकाशित कर दिया।

आश्रम में प्रवेश करने के बाद आश्रमवासियों ने सिद्धार्थ का स्वागत किया, उनका अभिनंदन किया और कुशल समाचार पूछे। सिद्धार्थ ने भी सभी आश्रमवासियों का अभिनंदन किया। मोक्ष चाहने वाले कुमार ने स्वर्ग चाहने वाले आश्रमवासियों के साथ बातचीत की और तपोवन का निरीक्षण किया। उन्होंने आश्रम की सारी गतिविधियों की जानकारी प्राप्त की और तपस्या के विविध रूपों के विषय में चर्चा की। प्रारंभिक परिचय के बाद उन्होंने आश्रम के तपस्वी साधकों से कहा— "आज मैं पहली बार आश्रम देख रहा हूँ। मैं यहाँ के नियमों से नितांत अपरिचित हूँ। कृपया आप बताइए कि आपका लक्ष्य क्या है? आप क्या कर रहे हैं?" तब एक तपस्वी ने उन्हें विभिन्न प्रकार की साधनाओं के विषय में बताया और उनके फलों की जानकारी भी दी। उन्होंने बताया कि कुछ तपस्वी पक्षियों की तरह बीन-बीन कर अन्न चुगते हैं; कुछ मृगों की तरह तृण चरते हैं; कुछ बाँबियों में साँपों के साथ रहकर वायु पर ही जीवित रहते हैं; कुछ जटाधारी साधु मंत्रों से अग्नि में



आहुति देते हैं; कुछ जल में प्रवेश कर मछलियों के साथ रहते हैं, इस तरह विविध प्रकार के कठोर तप बहुत समय तक करने के बाद श्रेष्ठ साधक स्वर्ग प्राप्त करते हैं तथा निकृष्ट साधक पुन: धरती पर जन्म लेते हैं। अंत में तपस्वी ने कहा— "दुख के मार्ग पर चलने से ही सुख मिल सकता है और सुख ही धर्म का मूल है।"

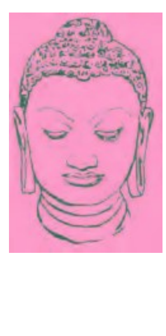
राजकुमार सिद्धार्थ ने तपस्वियों की सारी बातें ध्यान से सुनीं। परंतु उन्हें इनकी बातों से संतोष नहीं हुआ। उन्होंने मन-ही-मन कहा— "विविध प्रकार की ये तपस्याएँ दुख रूप ही हैं और इन तपस्याओं का फल स्वर्ग है, किंतु जब सब कुछ परिवर्तनशील है, तब इन आश्रमवासियों का परिश्रम भी स्थायी फल देने वाला नहीं हो सकता। उन्हें लगा कि जैसे कुछ लोग इस लोक में सुख पाने के लिए कष्ट भोगते हैं, वैसे ही ये लोग स्वर्ग में सुख भोगने के लिए कष्ट भोग रहे हैं। यह निंदनीय तो नहीं है, परंतु बुद्धिमानों को कुछ ऐसा करना चाहिए कि फिर करने के लिए कुछ न बचे।

राजकुमार ने आगे सोचा, यदि इस लोक में शरीर-पीड़ा सहना धर्म है, तो निश्चित ही शरीर के सुख को अधर्म कहना चाहिए। उन्हें लगा यह शरीर तो मन के अधीन है। मन के अनुसार ही यह कर्मों में प्रवृत्त है और उनसे निवृत्त होता है, अत: मन का दमन करना ही उचित होगा।

इस तरह विचार करते-करते शाम हो गई। फिर धीरे-धीरे उन्होंने उस वन में प्रवेश किया जहाँ यज्ञ का धुआँ फैला हुआ था। अग्निहोत्र की पूर्णाहुति दी जा रही थी। ऋषिगण एकत्रित थे, उनके मंत्रों के स्वरों से देव मंदिर गूँज रहा था और सारा वातावरण हवन की सुगंध से परिपूर्ण था।

राजकुमार सिद्धार्थ ने इस आश्रम में कई दिन बिताए। उन्होंने यहाँ पर चल रही सारी तप-विधियों का गहन अध्ययन और परीक्षण किया, किंतु उन्हें इन तप-विधियों से संतोष नहीं मिला, अत: एक दिन उन्होंने इस तपोवन को छोड़ देने का निश्चय किया।

कुछ ही दिनों में राजकुमार सिद्धार्थ के रूप, व्यवहार और विचारों से उस तपोभूमि के सभी निवासी ऐसे प्रभावित हो गए थे कि जब वे आश्रम से जाने लगे तो सभी उनके पीछे-पीछे चलने लगे। जब सिद्धार्थ ने देखा कि सभी आश्रमवासी उनके पीछे-पीछे चले आ रहे हैं तो वे रुके और एक सुंदर वृक्ष के नीचे बैठ गए। सारे आश्रमवासी उन्हें घेरकर खड़े हो गए। उनमें से एक वृद्ध साधु ने बड़े आदर के साथ उनसे कहा— "हे तात! आपके आने से यह आश्रम भरा-भरा-सा लगने लगा



था और अब आपके जाने से यह सूना-सूना सा होता जा रहा है। इसलिए आप इसे न छोड़ें। यहाँ निकट ही ब्रह्मर्षियों, राजर्षियों और देवर्षियों द्वारा सेवित हिमालय है। चारों ओर पवित्र तीर्थस्थान हैं। क्या आपने इस आश्रम में किसी को नकारा या संकुचित विचार वाला देखा है? किसी को अपवित्र देखा है? जिसके कारण आप यहाँ रहना नहीं चाहते। आपको जब तक अच्छा लगे तब तक आप यहीं रहें। ये तपस्वी अपनी तपस्या में आपको सहायक बनाना चाहते हैं। आपके यहाँ रहने से इन सबका अभ्युदय होगा।"

उस वृद्ध तपस्वी के विनय-वचनों को सुनकर राजकुमार ने कहा— "हे तपोधन! आप सबने मेरे प्रति ऐसे भाव व्यक्त करके मुझे जो स्नेह और आदर दिया है, उससे मैं अभिभूत-अभिभूसा हो गया हूँ। आप लोगों को छोड़ने में मुझे भी वैसा ही दुख हो रहा है, जैसे अपने बंधुओं को छोड़ने पर होता है, किंतु आप सबका धर्म स्वर्ग के लिए है और मेरी अभिलाषा मोक्ष की है। इसीलिए मैं इस तपोवन को छोड़ना चाहता हूँ। यहाँ के प्रति मेरे मन में न अरुचि है और न ही मैंने यहाँ कोई अपकार-दुराचार देखा है। आप महर्षि सदृश है। पूर्व युग के अनुरूप धर्म में प्रतिष्ठित हैं, परंतु इसमें मेरी कोई रुचि नहीं है। इसीलिए मैं यहाँ से जा हूँ।"

इस तरह तपस्वी कुमार के मनोहर, अर्थयुक्त और स्निग्ध वचन सुनकर सभी अत्यंत संतुष्ट हुए। तभी उनके बीच से एक भस्म लगाए तपस्वी बोला— "हे प्राज्ञ, आपका निश्चय सचमुच ही प्रशंसनीय है। आप ने युवावस्था में ही जन्मगत दोषों को देख लिया है, इसीलिए आपने स्वर्ग का नहीं, अपितु अपवर्ग (मोक्ष) का मार्ग चुना है। आप निश्चित ही विचारवान हैं। यदि आपका यही निर्णय है तो आप शीघ्र ही 'विंध्यकोष्ठ' नामक स्थान पर जाइए। वहाँ अराड मुनि निवास करते हैं। आप उनसे तत्वज्ञान सुनिए और यदि आपको रुचिकर लगे तो स्वीकार कीजिए। परंतु आपको देखकर मुझे लग रहा है कि आप में जो अगाध गंभीरता है, जो तेज है तथा जो लक्षण हैं, उनके कारण आप स्वयं उस पद को प्राप्त करेंगे जो पहले किसी अन्य ऋषि-महर्षि ने प्राप्त नहीं किया है।"

यह सुनकर राजकुमार ने सबको नमस्कार किया। सभी आश्रमवासी तपस्वियों ने विधिवत उन्हें प्रणाम किया। फिर राजकुमार आश्रम से बाहर निकल आए और आश्रमवासी धीरे-धीरे लौट गए।



अंत:पुर विलाप

अपने स्वामी के तपोवन जाने के बाद अश्व-रक्षक छंदक धीरे-धीरे अपने घोड़े के साथ कपिलवस्तु की ओर जाने लगा। स्वामी के विरह में वह अत्यंत व्याकुल था,

अश्रु थम नहीं रहे थे। जाते समय जिस मार्ग को उसने केवल एक रात में पूरा किया था, उसी मार्ग को अब पूरा करने में उसे आठ दिन लगे।

यद्यपि घोड़ा कंथक चल रहा था, पूर्ववत अलंकृत भी था, फिर भी शोक भाव के कारण वह अत्यंत मलिन और निस्तेज लग रहा था। जब से उसके स्वामी तपोवन गए हैं, तब से घोड़े ने न घास खाई है, न हीं पानी पिया है। इस तरह धीरे-धीरे दोनों ने कपिलवस्तु में प्रवेश किया।



कपिलवस्तु के वन, उपवन, जलाशय आदि सब कुछ कुमार के विरह में अरण्य के समान दिख रहे थे। राजकुमार के बिना दोनों के लौटने पर नगरवासियों ने वैसे ही आँसू बहाए जैसे प्राचीन काल में राम के बिना उनके रथ को देखकर अयोध्यावासियों ने आँसू बहाए थे। लोगों को उन पर खीज आ रही थी और वे कह रह थे— "पूरे नगर और राष्ट्र को आनंद देने वाले कुमार को तुम कहाँ छोड़ आए हो?"

बेचारा छंदक सबसे यही कहता कि मैंने कुमार को नहीं छोड़ा वरन वे ही मुझे निर्जन में रोता हुआ छोड़कर चले गए। छंदक की बातें सुनकर नागरिक कहते "तुमनें उन्हें किस वन में छोड़ा है? हम सब वहीं जाएँगे, क्योंकि उनके बिना यह नगर तो वन के समान हो गया है।"

नगर की जो स्त्रियाँ अपने घरों के झरोखों से झाँक रहीं थीं, वे राजकुमार के बिना घोड़े को देखकर रोने लगीं। अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ कंथक ने जब राजमहल में प्रवेश किया तो आर्त स्वर में हिनहिनाकर उसने अपना दुख प्रकट किया। उसकी हिनहिनाहट सुनकर राजमहल के सभी पक्षी और घोड़े आर्तनाद करने लगे। इस कोलाहल को सुनकर लोगों को लगा, जैसे राजकुमार लौट आए हैं। वे जिस स्थिति में थे, उसी स्थिति में बाहर आ गए। परंतु जब उन्हें ज्ञात हुआ कि राजकुमार नहीं आए हैं, तो सभी दुखी हो गए और रोने लगे। रानी गौतमी बिलख-बिलख कर रोने लगीं।

अंत:पुर की अनेक स्त्रियाँ शोक के कारण चेनताशून्य हो गईं। यह सब कुछ देख और सुनकर यशोधरा शोक और क्रोध से भरकर छंदक से बोली— "रे छंदक! रात को मुझे विवश सोती छोड़कर तुम मेरे मनोरथ को कहाँ छोड़ आए हो? अरे निर्दयी! अब तुम क्यों रो रहे हो? तुम हमारे हितैषी हो और तुम्हीं ने इस कुल का नाश कर दिया। अरे! यह कंथक अब क्यों हिनहिना रहा है? रात के अँधेरे में जब यह कुमार को लेकर गया था, तब क्या यह गूँगा हो रहा था?"

यशोधरा के वचन सुनकर छंदक और भी रोने लगा। फिर जैसे-तैसे अपने आपको सँभाल कर बोला— "हे देवी! आप कंथक की निदां न करें और न ही मुझे दोष दें। क्योंकि हम उस रात विवश थे। राजा के आदेश को जानते हुए भी मैं किसी दैवी प्रेरणा से घोड़ा ले आया और बिना थके रातभर उनके पीछे चलता रहा। घोड़े के चलने पर भी उसके खुरों से किसी तरह की ध्वनि नहीं हुई। राजभवन और नगर के सभी द्वार अपने आप खुल गए और सभी प्रहरी सो गए। इस सबको कोई दैवी विधान ही मानना चाहिए, तभी तो राजकुमार ने अपना मुकुट उतार फेंका और



काषाय वस्त्र धारण कर लिए। हे देवी! इस सबके पीछे न मेरी इच्छा थी, न घोड़े की। लगता है, यह सब कुछ दैवी प्रेरणा से ही हुआ है।"

छंदक के मुख से कुमार के जाने की यह अद्‌भुत कथा सुनकर अंत:पुर की सभी स्त्रियाँ विषाद से भर गईं और फूट-फूटकर रोने लगीं। मौसी गौतमी बिलख-बिलख कर रो रही थीं और बार-बार मूर्च्छित हो जाती थीं। यशोधरा रो-रोकर कहती थी कि मैं ही अभागिन हूँ तभी तो वे मुझे छोड़कर गये हैं। मेरी न स्वर्ग–प्राप्ति की इच्छा है, न कोई और। मैं तो बस यही चाहती हूँ कि वे मुझे इस लोक में या परलोक में किसी प्रकार भूलें नहीं। हाय! उस मनस्वी का रूप ही सुकुमार था, उसका हृदय तो अत्यंत कठोर और निर्दय था। तभी तो वे अपने बाल पुत्र को छोड़कर चले गए हैं। मेरा हृदय अवश्य ही पत्थर या लोहे का बना है तभी तो फट नहीं रहा। इस तरह विलाप करते-करते यशोधरा मूर्च्छित हो गईं और अंत:पुर की अन्य स्त्रियाँ भी बिलख-बिलख कर रोने लगीं।

पुत्र को प्राप्त करने के लिए राजा शुद्धोदन देव-मंदिर में हवन आदि अनुष्ठान कर रहे थे, परन्तु जब उन्होंने सुना कि छंदक और कंथक लौट आए हैं और कुमार ने संन्यास ग्रहण कर लिया है तो वे व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

राजा शुद्धोदन रो-रोकर कहने लगे— "मुझे, आज, दशरथ से ईर्ष्या हो रही है, जो अपने पुत्र राम के वन जाने पर तत्काल स्वर्ग चले गए। हे भद्र! मुझे वह आश्रम बताओं जहाँ मुझे जलांजलि देने वाले मेरे पुत्र को तुम छोड़ आए हो।" इस तरह राजा पुत्र के वियोग के कारण अपना धैर्य खो बैठे। जैसे राम के वियोग में दशरथ रोते-रोते चेतना-शून्य हो गये थे वैसे ही वे चेतना शून्य होकर धरती पर गिर पड़े।

राजा को इस प्रकार व्याकुल देखकर राजा के शास्त्रज्ञ पुरोहित और गुणवान मंत्रीगण उनका उपचार करने लगे। उन्होंने राजा को समझाया और कहा— "हे नर-वीर, आप शोक छोड़िए। धैर्य धारण कीजिए। आप असित मुनि की भविष्यवाणी याद कीजिए। उन्होंने कहा था कि इस कुमार को न स्वर्ग रोक सकता है, न चक्रवर्ती राज्य। फिर भी हमें प्रयत्न करना चाहिए। आप आज्ञा दीजिए। आप कहें तो हम वहाँ जाएँ, जहाँ कुमार गए हैं, उन्हें समझाएँ और बुला लाएँ।"



राजपुरोहित और मंत्रियों की बातें सुनकर राजा ने तुरंत उन्हें जाने की आज्ञा दी और कहा— "शावक के लिए उत्सुक पक्षी की तरह अपने पुत्र के लिए मेरा हृदय छटपटा रहा है। आप लोग शीघ्र जाइए और मेरे पुत्र को ले आइए।" राजा की आज्ञा प्राप्त कर राजपुरोहित और मंत्रीगण राजकुमार की खोज में शीघ्र ही नगर से निकल पड़े।

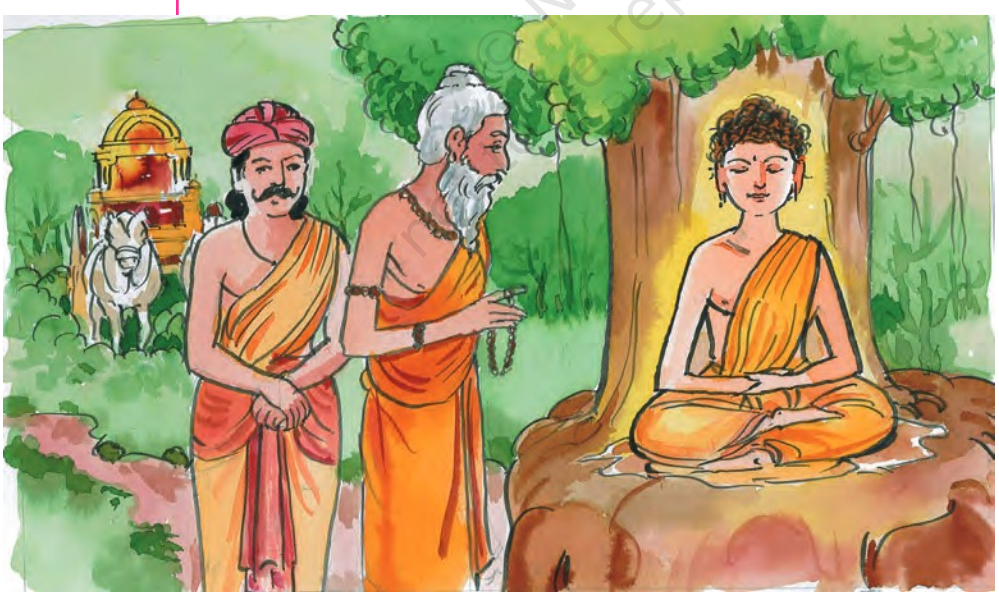
कुमार की खोज

राजा शुद्धोदन की आज्ञा पाकर राजपुरोहित और राजमंत्री दोनों शीघ्र उस वन की ओर चलने लगे, जहाँ छंदक और कंथक राजकुमार सिद्धार्थ को छोड़ आए थे। कुछ समय बाद वे भार्गव आश्रम के पास पहुँचे। उन्होंने अपना राजसी वेश त्याग दिया और सामान्य नागरिक के रूप में आश्रम में प्रवेश किया अंदर जाकर उन्होंने आचार्य की अभ्यर्थना की और अपने आने का प्रयोजन बताया।

राजपुरोहित और राजमंत्री की बातें सुनकर आचार्य भार्गव ने कहा—"राजकुमार यहाँ आए थे। वे युवक अवश्य हैं, परंतु अबोध नहीं हैं। वे यहाँ कुछ समय रहे थे, परंतु बाद में मोक्ष की खोज में अराड मुनि के आश्रम चले गए हैं।" आचार्य की बातें सुनकर राजपुरोहित और मंत्री ने उनसे आज्ञा ली और वे पुन: राजकुमार की खोज में आगे निकल गए।

रास्ते में उन्होंने एक वृक्ष के नीचे कुमार को बैठे देखा। लगता था कि कुमार ने कई दिनों से स्नान नहीं किया है। फिर भी उनका शरीर वैसे ही चमक रहा था जैसे कि बादलों के बीच सूर्य चमक रहा हो।

कुमार को देखते ही वे दोनों रथ से उतरे और जैसे वनवासी राम को मनाने वामदेव और वसिष्ठ चित्रकूट गए थे, वैसे ही दोनों कुमार को मनाने वहाँ गए। पुरोहित और मंत्री ने कुमार की और कुमार ने पुरोहित और मंत्री की अभ्यर्थना की।



दोनों कुमार की आज्ञा प्राप्त करके उनके पास बैठ गए। वृक्ष के नीचे बैठे कुमार को पुरोहित ने समझाया— "हे कुमार! आपके वियोग से दुखी राजा ने जो कहा है, उसे पहले आप सुनिए— धर्म के प्रति आपकी आस्था और आपके भविष्य को मैं जानता हूँ। परंतु आपने असमय ही वन का आश्रय लिया है। उसके कारण मैं शोक की आग में जल रहा हूँ। इसलिए मेरे प्राणों की रक्षा के लिए आपको घर लौट आना चाहिए। जैसे वायु मेघ को उड़ा देता है, सूर्य जल को सुखा देता है और अग्नि घास को जला देती है, वैसी ही शोक मुझे जला रहा है। अत: आप घर लौट चलिए और राजसुख भोगिए। समय आने पर वन जा सकते हैं। अभी तो लौट चलिए। मुझ मरणासन्न की उपेक्षा आपको नहीं करनी चाहिए, क्योंकि जीवों पर दया ही सभी धर्मों का मूल है।"

पुरोहित ने आगे कहा— "देखिए, धर्म के लिए वन जाना अनिवार्य नहीं है। सभी प्रकार के सुख भोगते हुए भी अनेक गृहस्थ राजाओं ने मोक्ष प्राप्त किया है। ध्रुव के अनुज बलि और वज्रबाहु, विदेहराज जनक और राम ऐसे ही राजा थे। इसलिए आप भी इन्हीं की तरह ज्ञान और राजलक्ष्मी दोनों का सुख एक साथ भोगिए। मेरी तो यही इच्छा है कि मैं आपको राज्याभिषेक करूँ और स्वयं सहर्ष वन को चला जाऊँ।" हे कुमार! राजा के अश्रुसिक्त वचनों को सुनकर आपको राजा के स्नेह को मान देना चाहिए। जैसे– भृगपुत्र परशुराम ने, दशरथ-पुत्र राम ने तथा गंगापुत्र भीष्म पितामह ने अपने पिता की आज्ञा मानी थी, वैसे ही आपको भी अपने पिता की आज्ञा माननी चाहिए।

आपका पोषण करने वाली माता अभी जीवित हैं, पर वे उसी तरह निरंतर क्रंदन करती रहती हैं, जैसे अपने बछड़े के न रहने पर गाय रोती रहती है। हंस से वियुक्त हंसिनी की तरह व्याकुल अपनी पत्नी को आप सनाथ कीजिए। अपने अबोध पुत्र को अपना प्यार दीजिए। नगर तथा अंत:पुर के सभी लोग शोकाकुल हैं, अपने दर्शन से उनका शोक दूर कीजिए।



राजपुरोहित के इन वचनों को सुनकर कुमार सिद्धार्थ ने सविनय उत्तर दिया—"है तात! मैं पुत्र के प्रति पिता के प्रेम को जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि राजा का मेरे प्रति विशेष प्रेम है। यह जानते हुए भी जरा, व्याधि और मृत्यु से डरकर ही मैंने लाचारी में स्वजनों को छोड़ा है। संयोग के बाद वियोग अवश्यंभावी है। इसीलिए मैं स्नेही पिता को अभी छोड़ रहा हूँ। अन्यथा अपने प्रिय स्वजनों को कौन नहीं देखना चाहेगा? मेरे कारण राजा को शोक हुआ, यह मुझे अच्छा नहीं

लगा, परन्तु मिलन स्वप्न के समान होता है और वियोग के दिन शाश्वत हैं। इसमें संताप का कोई कारण नहीं है। संताप तो अज्ञान के कारण ही होता है।"

कुमार ने आगे कहा— "मनुष्य पूर्वजन्म के स्वजनों को छोड़कर यहाँ आता है और फिर यहाँ स्वजनों को छोड़कर चला जाता है। जब गर्भ से लेकर सभी अवस्थाओं तक मृत्यु सामने खड़ी है, तो मोक्ष के लिए किसी काल विशेष की क्या प्रतीक्षा? राजा मेरे लिए राज्य छोड़ना चाहते हैं, यह उनकी उदारता है। किंतु मेरे लिए यह अपथ्य के समान अग्राह्य है। धर्म की खोज में मैं वन में आया हूँ। मेरे लिए अब अपनी प्रतिज्ञा को तोड़कर घर लौटना उचित नहीं होगा। मैं अब घर और बंधुओं के बंधन में नहीं पड़ना चाहता।"

राजकुमार की बातों को सुनकर राजमंत्री ने भी उन्हें समझाया। उन्होंने कहा— "हे कुमार! धर्म में आपकी निष्ठा अनुचित नहीं है, परंतु वृद्ध पिता को दुख: देकर धर्म का पालन भी उपयुक्त नहीं है। आप प्रत्यक्ष सुख को छोड़कर अदृष्ट लक्ष्य के लिए वन में चले आए हैं, उसमें कोई बुद्धिमानी नहीं है। कुछ लोग पुनर्जन्म को ही नहीं मानते। ऐसी स्थिति में प्रत्यक्ष प्राप्त लक्ष्मी का उपभोग करना ही उचित है।शास्त्रों का विधान है कि संतान उत्पत्ति द्वारा पितृऋण, वेदों के अध्ययन द्वारा ऋषि ऋण और यज्ञों के द्वारा देव-ऋण से मुक्त होना ही मोक्ष है। इसलिए हे सौम्य! यदि आप की रुचि मोक्ष में है तो शास्त्रानुसार आचरण कीजिए। इससे आपको मोक्ष भी मिलेगा और पिता का शोक भी नष्ट हो जाएगा। आपको तपोवन से घर लौटने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करना चाहिए, क्योंकि पहले भी अपनी प्रजा के अनुरोध पर राजा अंबरीष वन से घर लौट आए थे। इसी प्रकार राम और शाल्व देश के राजा द्रुम भी वन से घर लौट आए थे। अत: धर्म के लिए वन से घर लौटने में किसी प्रकार का दोष नहीं है।"

राजमंत्री के तर्कों को सुनकर राजकुमार ने कहा— "मैं इस विषय में दूसरों की बातों पर विश्वास नहीं करता। तपस्या और शांति से जो तत्वज्ञान मुझे होगा, मैं उसे ही स्वीकार करूँगा। राम जैसे पहले के राजाओं के जो उदाहरण आपने दिए हैं, वे मेरे लिए प्रमाण नहीं हैं। इसीलिए यदि सूर्य पृथ्वी पर गिर पड़े, हिमालय चलायमान हो जाए, तो भी मैं बिना तत्वज्ञान प्राप्त किए घर नहीं लौट सकता। मैं जलती हुई आग में प्रवेश कर सकता हूँ, पर असफल होकर घर में प्रवेश नहीं कर सकता।"



इस प्रकार अपनी बातें स्पष्ट रूप से कहकर राजकुमार वहाँ से उठकर आगे चले गए। राजपुरोहित और राजमंत्री, राजकुमार के दृढ़ निश्चय को सुनकर बहुत

दुखी हुए। कुछ समय तक वे कुमार के पीछे-पीछे चले, फिर निराश होकर नगर की ओर लौटने लगे। उन्होंने राजकुमार की गतिविधि के बारे में सूचना देने के लिए कुछ गुप्तचरों को नियुक्त किया। राजा से अब क्या कहेंगे, कैसे उन्हें समझाएँगे, यही सोचते-सोचते वे कपिलवस्तु की ओर चलने लगे।

बिंबसार से भेंट

राजपुरोहित और राजमंत्री को छोड़कर राजकुमार आगे चलते गए। कुछ समय बाद उन्होंने उत्ताल तरंगों वाली गंगा को पार किया और धन-धान्य से संपन्न राजगृह नामक नगर में प्रवेश किया। चारों ओर से पर्वतों से सुरक्षित और पवित्र तप्त कुंडों से युक्त इस नगर में उन्होंने वैसे ही प्रवेश किया जैसे कि स्वर्ग में स्वयंभू (ब्रह्मा) ने प्रवेश किया था। शिव के समान दृढ़व्रती राजकुमार के गांभीर्य तथा तेज के कारण नगर के लोग उन्हें विस्मय से निहारते रहे। उनका ऐसा प्रभाव था कि जो लोग जा रहे थे, वे रुक गए, जो रुके हुए थे, वे उनके पीछे-पीछे चलने लगे, जो जल्दी-जल्दी जा रहे थे, वे धीरे-धीरे चलने लगे और जौ बैठे थे, वे खड़े हो गए। किसी ने आगे बढ़कर अपने हाथों से उनकी पूजा की, किसी ने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और और किसी ने मधुर शब्दों में उनका अभिनंदन किया। उनको देखकर जो लोग सुसज्जित थे, विचित्र वेशभूषा धारण किए हुए थे, वे लज्जित हो गए और जो वाचाल थे, वे मौन हो गए। उनकी भृकुटी, ललाट, मुख, नेत्र, शरीर, हाथ, पैर, चलने की गति, जो भी जिसने देखी, वह वही देखता रह गया। उस प्रत्यक्ष धर्म की मूर्ति के सामने सभी ठगे से रह गए।

मगध के राजा बिंबसार ने जब अपने महल से उन्हें और उनके पीछे-पीछे चलने वाली भीड़ को देखा तो उन्होंने इसका कारण पूछा। राजकर्मचारियों ने राजा को बताया कि वह शाक्य राजपुत्र परिव्राजक सिद्धार्थ हैं। इनके विषय में ब्राह्मणों ने यह भविष्यवाणी की थी कि यह या तो परम ज्ञान को प्राप्त करेंगे या चक्रवर्ती सम्राट होंगे।

यह सुनकर राजा ने अपने अनुचरों को आज्ञा दी— "जाओ और पता लगाओ, वह कहाँ जा रहा है?" राजा की आज्ञा के अनुसार राजकर्मचारी राजमहल से बाहर आए और परिव्राजक वेशधारी सिद्धार्थ के पीछे-पीछे चलने लगे उन्होंने देखा कि परिव्राजक की दृष्टि स्थिर है; वाणी मौन है; गति नियंत्रित है; वे भिक्षा माँग रहे हैं; भिक्षा में जो कुछ मिलता है, वह उसे ही स्वीकार करते हुए आगे बढ़ रहे हैं।



भिक्षा में मिले अन्न को लेकर वे एक पर्वत पर गए। एकांत निर्झर के पास बैठकर उन्होंने भोजन किया और फिर वे पांडव पर्वत पर जाकर बैठ गए। काषाय वेशधारी सिद्धार्थ पर्वत पर वैसे ही सुशोभित हो रहे थे, जैसे कि उदयाचल पर बालसूर्य प्रकट हो गया हो।

राजकर्मचारियों ने यह सब देखकर राजा बिंबसार को सूचित किया। बिंबसार ने अपने साथ कुछ अनुचरों को लिया और वे स्वयं बोधिसत्व (सिद्धार्थ) से मिलने के लिए चल पड़े।

वहाँ पहुँचने पर राजा बिंबसार ने देखा कि बोधिसत्व पर्यंक आसन में शांत भाव से बैठे ऐसे लग रहे हैं, जैसे कि बादलों की ओट से चंद्रमा चमक रहा हो। राजा धीरे-धीरे उनके निकट गए और कुशल-क्षेम पूछी। कुमार ने भी यथोचित उत्तर दिया। फिर राजा आज्ञा प्राप्त कर एक शिलाखंड पर बैठ गए और उनसे वार्तालाप करने लगे। राजा बिंबसार ने उनसे कहा— "हे कुमार! आपके कुल से हमारा पुराना प्रेम-संबंध है। हे मित्र, मेरी बात सुनिए। आपका सूर्य वंश महान है और आपकी अवस्था अभी नई है। फिर क्यों आपकी बुद्धि स्वाभाविक क्रम तोड़कर, राज्य में न रमकर भिक्षा वृत्ति में रमी है? आपका शरीर तो अभी लाल-चंदन के लेप के योग्य है, काषाय वस्त्र धारण करने लायक नहीं है। अभी आपके हाथ प्रजापालन के योग्य हैं, भिक्षा माँगने योग्य नहीं हैं। हे सौम्य! यदि आप स्नेहवश अपने पिता का राज्य पराक्रम से प्राप्त करना नहीं चाहते, पिता के बाद राज्य प्राप्ति तक प्रतीक्षा नहीं कर सकते, तो आप मेरा आधा राज्य ले लीजिए और भोगिए। आप मेरे साथ मैत्री कीजिए। यदि आपको अपने कुल के अभिमान के कारण मुझ पर विश्वास नहीं है, तो मेरी प्रबल सेना की सहायता से शत्रुओं को जीतिए। आप इन दोनों विकल्पों में से किसी एक पर अपनी बुद्धि स्थिर कीजिए और धर्म, अर्थ और काम का सेवन कीजिए। यदि संपूर्ण पुरुषार्थ की प्राप्ति की इच्छा है तो त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) का सेवन कर अपना जन्म सफल कीजिए। आप धनुष चढ़ाने लायक अपनी भुजाओं को इस प्रकार व्यर्थ न कीजिए। ये मांधाता के समान तीनों लोकों को जीतने में सक्षम हैं, फिर पृथ्वी की तो बात ही क्या! निश्चय ही यह सब कुछ मैं स्नेहवश ही आपसे कह रहा हूँ! न ऐश्वर्य के राग से और न अभिमान से। आपको भिक्षु वेश में देखकर मुझे दया आती है और रोना भी आता है। जब तक बुढ़ापा आपके रूप को नहीं मिटा देता तब तक विषयों को भोगिए। हे धर्मप्रिय! समयानुसार ही धर्माचरण करना चाहिए।"



इस प्रकार मगध के अधिपति ने विविध प्रकार से कुमार को समझाया परंतु वह कैलाश पर्वत के समान अटल रहा और ज़रा भी विचलित नहीं हुआ।

काम निंदा

मगधराज के मुख से अपने लक्ष्य के लिए प्रतिकूल बातें सुनकर भी सिद्धार्थ ने शांतिपूर्वक निर्विकार भाव से उत्तर देते हुए कहा— "हे हर्यंकवंशी राजा! आपने अपने मित्र के पक्ष में जो कुछ भी कहा है, वह आश्चर्यजनक नहीं है। पूर्वजों की मैत्री को सज्जन अपनी प्रीति परंपरा से और भी बढ़ाते हैं। सचमुच जो धनहीन मित्र की भी सहायता करता है, वही सच्चा मित्र कहलाता है। इसलिए हे राजन! मित्रता और सज्जनता के कारण मैं आपको उत्तर तो नहीं दे सकता, परंतु अनुनय अवश्य करना चाहता हूँ। मैं तो जरा और मृत्यु के भय से ही मोक्ष की इच्छा से धर्म की शरण में आया हूँ। इसलिए मैंने काम को त्यागा है और उसी के साथ अपने बंधुओं को भी छोड़ा है। मैं साँपों से, वज्रपात से या प्रचंड अग्नि से भी उतना नहीं डरता, जितना मैं विषयों से डरता हूँ। काम अनित्य है; वह ज्ञान रूपी धन का चोर है; वह मोह-पाश में बाँधता है; जैसे पवन-प्रेरित अग्नि ईंधन से तृप्त नहीं होती; वैसे ही विषय-तृषित व्यक्ति कभी विषय-भोगों से तृप्त नहीं होता; जैसे अनंत नदियों के गिरने से भी समुद्र की तृप्ति नहीं होती वैसे ही काम के भोग से मनुष्य को कभी तृप्ति नहीं मिलती।

देखिए, देवों द्वारा स्वर्ण की वर्षा किए जाने पर, सभी द्वीपों को जीतने के बाद और इंद्र का आधा आसन प्राप्त करने के बाद भी मांधाता को तृप्ति नहीं मिली। विषयों का चिंतन भी अमंगल है। इसीलिए सज्जन काम का त्याग करते हैं। यह जानकर भी इस काम के विष को कौन ग्रहण करेगा?

आप जानते हैं कि संगीत की आसक्ति से हिरन मरते हैं; रूप की आसक्ति से पतंगे जल पाते हैं; मांस के लोभ से मछलियाँ प्राण देती हैं; आसक्ति का परिणाम ही विपत्ति है। इसलिए मैं मानता हूँ कि इससे दूर रहना ही बुद्धिमानी है।



मैं जानता हूँ, न राजा सदा हँसता रहता है और न दास सदा संतप्त रहता है। मेरे लिए राजा और दास दोनों ही बराबर हैं। संपूर्ण पृथ्वी को जीतकर भी सम्राट अपने निवास के लिए एक ही पुर चुनता है। राजा भी एक जोड़ा वस्त्र पहनता है और एक ही शय्या पर सोता है, शेष सब कुछ तो मात्र दिखावा है, मद है।

संतोष हो जाने पर मनुष्य को यह सारा संसार निरर्थक लगने लगता है। इसीलिए मैं जान-बूझकर कल्याण के मार्ग पर प्रवृत्त हुआ हूँ। आप मित्र होने के नाते कामना कीजिए कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँ। मैं न तो क्रोध से वन में आया हूँ न पराजित होकर या किसी फल विशेष-की इच्छा से आया हूँ। इसीलिए मैं आपकी बात नहीं मान पा रहा हूँ। मैं तो संसार रूपी वाण से धायता होकर शांति पाने की इच्छा से निकला हूँ। मुझे तो स्वर्ग का भी राज्य नहीं चाहिए, इस पृथ्वी के राज्य की तो बात ही क्या!

हे राजन! आपने कहा था कि त्रिवर्ग का संपूर्ण रूप से सेवन करना ही परम धर्म है। आपकी यह बात मुझे अनर्थकारी लगती है, क्योंकि त्रिवर्ग नाशवान है और संतोषप्रद भी नहीं हैं। मैं तो परम पद उसे मानता हूँ जिसमें न जरा है; न भय है; न रोग है; न जन्म है; न मृत्यु है; न व्याधि हैं और जिसके पाने के बाद कुछ भी करणीय नहीं रहता है। यमराज सभी को किसी भी अवस्था में बलात खींच लेता है, इसीलिए कल्याण के लिए वृद्धावस्था की प्रतीक्षा करना उचित नहीं है।

हे राजन! अब मुझे ठगा नहीं जा सकता है। मैं वह सुख भी नहीं चाहता, जो दूसरों को दु:ख देकर प्राप्त किया जाता है। मैं यहाँ आया था और अब मोक्षवादी अराड मुनि से मिलने जा रहा हूँ। आपका कल्याण हो। आप मुझे कठोर सत्य कहने के लिए क्षमा करें।

हे राजन! आप इंद्र के समान रक्षा करें; सूर्य के समान रक्षा करें; आप अपने गुणों से कल्याण की रक्षा करें; पृथ्वी की रक्षा करें; आयु की रक्षा करें, सत्पुत्रों की रक्षा करें; धर्म की रक्षा करें और अपनी रक्षा करें।

कुमार भिक्षु के ये आशीर्वचन सुनकर मगधराज ने बड़े अनुनय के साथ हाथ जोड़े और कहा— "आप अपना अभीष्ट प्राप्त करें, कृतार्थ हों और समय आने पर मेरे ऊपर भी अनुग्रह करें।" "अच्छा, ऐसा ही हो," कह कर सिद्धार्थ वहाँ से वैश्वंतर आश्रम की ओर चल दिए। मगधराज भी सिद्धार्थ के परिव्राजक रूप से विस्मित होकर अनुचरों के साथ राजगृह की ओर लौट गए।



प्रश्न

1. सिद्धार्थ को निर्वाण के विषय में पहली प्रेरणा किस प्रकार मिली?
2. राजकुमार ने तपोवन न जाने के लिए राजा के समक्ष क्या-क्या शर्तें रखीं?

3. छंदक कौन था? सिद्धार्थ ने उसे नींद से क्यों जगाया?
4. सिद्धार्थ से अलग होने पर छंदक और कंथक की दशा का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
5. तपोवन में सिद्धार्थ ने तपस्वियों को क्या करने के लिए कहा?
6. वन से लौटने के संबंध में राजमंत्री के तर्क सुनकर सिद्धार्थ ने क्या कहा?
7. बिंबसार ने सिद्धार्थ की सहायता के लिए क्या प्रस्ताव रखा?



अध्याय 3

ज्ञान-प्राप्ति

D822CH03

दर्शन परिचर्चा

शांतिप्रिय अराड मनि के आश्रम में राजकुमार सिद्धार्थ ने प्रवेश किया, तो ऐसा लगा, जैसे उनके शरीर की आभा से सारा आश्रम प्रकाशित हो गया हो। मुनि अराड ने दूर से ही राजकुमार को देख लिया और उच्च स्वर में कहा— “स्वागत है, आइए।” राजकुमार धीरे-धीरे उनके पास आए। दोनों ने विधिपूर्वक एक-दूसरे का अभिनंदन, अभिवादन किया, कुशलक्षेम पूछा और फिर मृगचर्म बिछी दो चौकियों पर दोनों बैठ गए।

मुनि ने राजकुमार को निहारते हुए स्नेहपूर्वक कहा—“हे सौम्य! मुझे पता चला है कि आप सभी स्नेह-बंधनों को तोड़कर घर से निकल आए हैं। आपका मन सब प्रकार से धैर्यवान है। आप ज्ञानी हैं, तभी तो राजलक्ष्मी को त्यागकर यहाँ आ गए हैं। वैसे राजा लोग भोगी हुई राजलक्ष्मी को अपनी संतान को सौंपकर ही वन में आते रहे हैं, परंतु आश्चर्य की बात है कि आप विषयों के बीच रहते हुए युवावस्था में ही लक्ष्मी को बिना भोगे ही यहाँ आ गए हैं। इस धर्म को जानने के लिए आप श्रेष्ठ पात्र हैं, आप ज्ञान रूपी नौका पर सवार होकर दुख रूपी सागर को पार कीजिए। यद्यपि शिष्य को अच्छी तरह जानकर ही उचित समय पर शास्त्र-ज्ञान दिया जाता है, परंतु आपकी गंभीरता और संकल्प को देखकर मैं आपकी परीक्षा नहीं लूँगा।”

अराड मुनि के ये शब्द सुनकर कुमार परिव्राजक अत्यंत प्रसन्न हुए। वे बोले— “आप जैसे विरक्त की यह अनुकूलता देखकर मैं कृतार्थ हो गया हूँ। जैसे देखने की इच्छा वाला प्रकाश को; यात्रा की इच्छा वाला पथ-प्रदर्शक को और नदी पार जाने की इच्छा वाला नौका को देखता है, वैसे ही मैं आपको देख रहा हूँ। यदि आप उचित समझें तो मुझे जरा और मृत्यु के रोग से मुक्त होने का उपाय बताइए।"



अराड मुनि ने कुमार से कहा— “हे श्रोताओं में श्रेष्ठ! पहले आप हमारा सिद्धांत सुनिए और समझिए कि यह संसार जीवन और मृत्यु के चक्र के रूप में चलता रहता है।

हे मोहमुक्त! आलस्य अंधकार है, जन्म-मृत्यु मोह हैं, काम महामोह है और क्रोध तथा विषाद भी अंधकार है। इन्हीं पाँचों को अविद्या कहते हैं और इन्हीं में फँसकर व्यक्ति पुन:-पुन: जन्म और मृत्यु के चक्र में पड़ता है। इस प्रकार आत्मा तत्वज्ञान प्राप्त कर आवागमन से मुक्त होती है और अक्षय पद अमरत्व को प्राप्त करता है।" अराड मुनि से यह तत्वज्ञान प्राप्त करने के पश्चात कुमार ने अक्षय पद प्राप्त करने के उपाय पूछे। तब उन्होंने अनेक उपाय बताए और अंत में कहा— "यदि आप संतुष्ट हों और उचित समझें तो इनका अनुपालन कीजिए, क्योंकि इन्हीं सिद्धांत का अनुसरण करके प्राचीनकाल में अनेक ऋषि-मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया है।"

अराड मुनि के प्रवचन सुनकर कुमार ने कहा— "हे मुनि! मैंने आपसे उत्तरोत्तर कल्याणकारी मार्ग सुना। किंतु मैं इसे मोक्ष नहीं मान सकता। आत्मा के अस्तित्व को मानने पर अहंकार के अस्तित्व को भी मानना पड़ता है। मुझे आपकी ये बातें स्वीकार नहीं हैं।"

अराड मुनि के सिद्धांतों को सुनने के बाद भी कुमार को संतोष नहीं हुआ। अत: 'यह धर्म अधूरा है,' ऐसा मानकर वे उस आश्रम से निकल गए और अपने लक्ष्य की खोज में आगे बढ़ गए।

अराड मुनि के आश्रम से निकलकर कुमार उद्रक ऋषि के आश्रम में गए। वहाँ भी आत्मा की सत्ता के विचार जानकर उन्हें संतोष नहीं हुआ, अत: 'परम-पद' पाने की इच्छा से उन्होंने उद्रक ऋषि का आश्रम भी छोड़ दिया और धीरे-धीरे वे राजर्षि गय के 'नगरी' नामक आश्रम में गए।

कुछ समय के बाद बोधिसत्व कुमार को एकांत विहार की इच्छा हुई। इसलिए उन्होंने नैरंजना नदी के तट पर निवास किया। वहाँ उन्होंने पाँच भिक्षुओं को देखा, जिन्होंने अपनी इंद्रियों को वश में कर लिया था और वहीं रहकर तपस्या कर रहे थे। उन भिक्षुओं ने जब इस नवागत साधु को देखा तो वे उनके निकट आए और उनकी सेवा करने लगे।

कुछ समय के बाद जन्म और मृत्यु का अंत करने के उपाय के रूप में बोधिसत्व ने निराहार रहकर कठोर तप प्रारंभ किया। वहाँ उन्होंने छह वर्षों तक कठोर तप किया और अनेक उपवास व्रत किए। कठोर तपस्या के कारण वे कृशकाय हो गए। वे भोजन के रूप में कभी एक बेर, कभी एक तिल, कभी एक तंडुल (चावल) का सेवन करते थे। इस कठोर तपस्या के कारण जैसे-जैसे उनका शरीर कृश होता जाता था, उनके मुखमंडल का तेज बढ़ता जाता था। मेदा, मांस और रक्त से रहित और मात्र त्वचा और अस्थि वाला उनका शरीर फिर भी समुद्र के समान भरा-भरा-सा लगता था।



कुछ समय के बाद उन्हें ऐसा लगने लगा कि इस प्रकार की कठोर तपस्या से व्यर्थ ही शरीर को कष्ट होता है। यह तापस धर्म न वैराग्य दे पाता है, न बोध, न मुक्ति। उन्हें ऐसी अनुभूति भी हुई कि दुर्बल व्यक्ति को मोक्ष नहीं मिल सकता। अत: वे शरीर-बल-वृद्धि के विषय में विचार करने लगे। उन्होंने सोचा भूख, प्यास और श्रम से अस्वस्थ मन के द्वारा मोक्ष भला कैसे प्राप्त हो सकता है? उन्हें लगा कि आहार तृप्ति से ही मानसिक शक्ति मिलती है। स्थिर और प्रसन्न मन ही समाधि पा सकता है तथा समाधि युक्त चित्त वाला व्यक्ति ही ध्यान योग कर सकता है, ध्यान योग के सिद्ध हो जाने के बाद साधक उस धर्म को प्राप्त करता है, जिससे उसे दुर्लभ, शांत, अजर-अमर पद प्राप्त होता है। उन्हें लगा कि मुक्ति का उपाय आहार पर ही आधारित है। अत: उन्होंने भोजन करने की इच्छा की।

कठोर तपश्चर्या से बोधिसत्व अत्यंत कृशकाय और दुर्बल हो गए थे, फिर भी वे धीरे-धीरे नैरंजना नदी की ओर गए, स्नान किया और तट के वृक्षों की शाखाओं का सहारा लेकर वे ऊपर आए।

उसी समय निकट ही रहने वाले गोपराज की कन्या 'नंदबाला' प्रसन्नता पूर्वक वहाँ आई। शंख जैसी गोरी बाँहों वाली गोपबाला ने नीला वस्त्र धारण किया था और लग रही थी, जैसे फेन मालाओं से युक्त यमुना प्रकट हो गई हो। नंदबाला ने पहले श्रद्धापूर्वक बोधिसत्व को प्रणाम किया और उन्हें पायस (खीर) से परिपूर्ण पात्र प्रदान किया। इस प्रकार के सुभोज्य से तृप्त होकर उन्हें लगा कि वे अब बोधि प्राप्त करने में समर्थ हो गए हैं।

बोधिसत्व के साथ रह रहे पाँच भिक्षुओं ने जब उनका यह आचरण देखा, तो उन्हें लगा कि अब यह मुनि भी धर्म-च्युत हो गया है। इसलिए वे इन्हें छोड़कर चले गए।

उन सबके चले जाने के बाद बोधिसत्व सिद्धार्थ ने बोधि प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प किया और वे पास ही एक अवश्त्थ (पीपल) वृक्ष के नीचे भूमि पर आसन लगा कर बैठ गए। तभी 'काल' नामक एक सर्प प्रकट हुआ, क्योंकि उसे ज्ञात हो चुका था कि यह मुनि अवश्य ही बोधि प्राप्त करेगा। उसने पहले उनकी स्तुति की। काल सर्प ने कहा— "हे मुनि, आपके चरणों से आक्रांत होकर यह पृथ्वी बार-बार डोल रही है, सूर्य के समान आपकी आभा सर्वत्र प्रकाशित है। आप अवश्य ही अपना लक्ष्य प्राप्त करेंगे। हे कमललोचन! जिस प्रकार आकाश में नीलकंठ पक्षियों के झुंड आपकी प्रदक्षिणा कर रहे हैं और मंद-मंद पवन प्रवाहित हो रही है, उससे लगता है कि आप अवश्य ही बुद्ध बनेंगे।"





सर्प द्वारा अपनी स्तुति सुनकर सिद्धार्थ ने तृण लेकर बोधि प्राप्ति के लिए प्रतिज्ञा की। वे महावृक्ष के नीचे बैठ गए। उन्होंने निश्चय किया— "जब तक मैं कृतार्थ नहीं हो जाता, इस आसन से नहीं उठूँगा।"

जब सिद्धार्थ ने प्रतिज्ञापूर्वक आसन लगाया तो देवतागण अत्यंत प्रसन्न हुए। सर्वत्र नीरवता छा गई। उस समय न मृग बोले, न पक्षी। वे धीरे-धीरे नितांत एकांत-शांत वातावरण में समाधिस्थ हो गए।

मार की पराजय

जब महामुनि सिद्धार्थ ने मोक्ष प्राप्ति की प्रतिज्ञा कर आसन लगाया तो सारा लोक अत्यंत प्रसन्न हुआ, परंतु सद्धर्म का शत्रु मार (कामदेव) भयभीत हो गया। उसे सामान्यत: कामदेव, चित्रायुध और पुष्पशर कहा जाता है। यह काम के संचार का अधिपति है, यही मार है। उसके विभ्रम, हर्ष और दर्प नाम के तीन पुत्र हैं और अरति, प्रीति और तृषा नाम की तीन कन्याएँ हैं। उन्होंने जब अपने पिता को भयभीत देखा तो इसका कारण जानना चाहा। मार ने अपने पुत्र और पुत्रियों को बताया— "देखो, इस मुनि ने प्रतिज्ञा का कवच पहनकर सत्व के धनुष पर अपनी बुद्धि के बाण चढ़ा लिए हैं। यह हमारे राज्य को जीतना चाहता है। यही मेरे दुख और भय का कारण है। यदि यह मुझे जीत लेता है और सारे संसार को मोक्ष का मार्ग बता देता है तो राज्य सूना हो जाएगा। इसलिए यह ज्ञान-दृष्टि प्राप्त करे उससे पहले ही मुझे इसका व्रत भंग कर देना चाहिए। अत: मैं भी अभी अपना धनुष-बाण लेकर तुम सबके साथ इस पर आक्रमण करने जा रहा हूँ।"

इस प्रकार सारी स्थिति समझाकर मार अपने पुत्र-पुत्रियों को साथ लेकर उसी अश्वत्थ वृक्ष के पास गया, जहाँ महामुनि समाधि लगाकर विराजमान थे। उसने पहले महामुनि को ललकारा और फिर धनुष-बाण हाथ में लेकर कहा— "हे मृत्यु से डरने वाले क्षत्रिय उठो, अपने क्षत्रिय धर्म का आचरण करो। मोक्ष का संकल्प छोड़ो। शास्त्रों और यज्ञों से लोक जीतकर इंद्रपद प्राप्त करो। नहीं तो मैं अपना बाण छोड़ दूँगा।"



मार की इस चेतावनी का जब मुनि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो उसने अपने पुत्रों और कन्याओं को आगे भेजा और अपना बाण छोड़ दिया, परंतु इसका भी

कोई प्रभाव मुनि पर नहीं हुआ, तो वह बहुत दुखी हुआ। वह सोचने लगा— "मैंने यही बाण शिव पर छोड़ा था तो एक बार विचलित हो गए थे, परंतु आज यह निष्फल कैसे हो गया है? क्या इस मुनि के हृदय नहीं है, अथवा यह बाण वह बाण नहीं रहा जिसने शिव को पराजित किया था।" इस प्रकार सोचते हुए उसने अपनी सेना को याद किया। तत्काल उसकी विकराल सेना उपस्थित हो गई।

महामुनि के चारों ओर विचित्र और भयंकर आकृति वाले जीवों की भीड़-सी लग गई। वे विविध प्रकार की रूप-सज्जा धारण किए हुए थे। उनमें से कुछ त्रिशूल घुमा-घुमाकर नाच रहे थे, कुछ गदा हाथ में लिए इधर-उधर कूद रहे थे और साँड की तरह हुंकार रहे थे।

रात्रि के प्रारंभ में ही शाक्य मुनि और मार के बीच होने वाले युद्ध के कारण सारा आकाश मलिन हो गया, पृथ्वी काँपने लगी और दिशाएँ जलने लगीं। उस समय भयंकर झंझावात प्रवाहित होने लगा। आकाश में उस समय न तारे थे और न चंद्रमा था। चारों ओर घनघोर अंधकार छा गया। इन सबके बीच शाक्य मुनि उसी प्रकार स्थिर चित्त बैठे रहे, जिस प्रकार गायों के बीच में सिंह निश्चिंत भाव से बैठा रहता है।

मार ने तब अपनी सेना को आक्रमण करने का आदेश दिया और कहा कि महर्षि को भयभीत करो, जिससे इसका ध्यान भंग हो जाए। आज्ञानुसार सभी महामुनि को डराने लगे। किंतु जैसे खेल में उत्तेजित बालकों को न व्यथा होती है, न उद्वेग, वैसे ही महर्षि इन सबके भयंकर रूपों और क्रिया-कलापों से न व्यथित हुए और न ही उत्तेजित।

जब मार के किसी सैनिक ने अपनी आँखें तरेरकर महामुनि पर गदा से प्रहार किया तो उसका गदा सहित हाथ ही जकड़कर रह गया। किसी ने शिला और किसी ने वृक्ष उठाकर उन पर प्रहार करना चाहा तो स्वयं ही गिर गए। किसी ने उन पर अंगारों की वर्षा की तो मुनि के मैत्री भाव के कारण वे लाल कमलों की पंखुड़ियाँ बनकर बरसने लगे। शाक्य मुनि अपने आसन से ज़रा भी विचलित नहीं हुए। इस भयंकर वातावरण से वन के पशु-पक्षी आर्तनाद करने लगे। सभी भयभीत हो गए। किंतु सिद्धार्थ मार की सेना से भयभीत नहीं हुए। इस पर मार को बहुत दुख हुआ और उसे बहुत क्रोध भी आया। तभी किसी अदृश्य जीव ने आकाश से प्रकट होकर मार से कहा— "तुम व्यर्थ ही क्यों परिश्रम कर रहे हो? जैसे सुमेरु पर्वत को हवा हिला नहीं सकती, वैसे ही तुम और तुम्हारे भूतगण इस महामुनि को विचलित नहीं



कर सकते। चाहे अग्नि अपनी उष्णता छोड़ दे; चाहे जल अपना द्रवत्व त्याग दे; चाहे पृथ्वी अपनी कक्षा छोड़ दे, लेकिन अपने पूर्व जन्मों के पुण्य-प्रताप से यह मुनि अपना नहीं निश्चय छोड़ेगा। यह मुनि शारीरिक और मानसिक रोगों से पीड़ित, रोगों से पीड़ित सारे जगत का महावैद्य है। तुम इसके कार्य में विघ्न न डालो।"

उस अदृश्य जीव ने आगे कहा— "देखो! क्षमा रूपी जटा; धैर्य रूपी दृढ़ मूल; चरित्र रूपी पुष्प, बुद्धि रूपी शाखा और धर्म रूपी फल देने वाला यह वृक्ष उखाड़ने योग्य नहीं है। बोधि-प्राप्ति के लिए जो कार्य पहले इन्होंने किए हैं, उनकी सिद्धि का समय अब आ गया है। यह स्थान भी वही है, जहाँ प्राचीनकाल में अनेक मुनियों ने साधना की है। यह स्थान भूतल की नाभि है। ऐसी श्रेष्ठ भूमि पृथ्वी पर अन्यत्र नहीं है जो इस महामुनि की समाधि के वेग को सह सके। इसलिए हे मार! तुम व्यर्थ परिश्रम मत करो। जाओ, शोक मत करो और शांति प्राप्त करो।"

अपने सभी प्रयत्नों को विफल होते देखकर और इस अदृश्य जीव की ये बातें सुनकर मार अत्यंत खिन्न हुआ और वहाँ से शीघ्र भाग गया।जैसे अपने सेनानायक के मारे जाने पर सैनिक भाग जाते हैं, वैसे ही मार के जाने के बाद उसके सारे भूतगण भाग गए और मार पर महर्षि की विजय हो गई।मार पर महर्षि की विजय होते ही सारा आकाश चंद्रमा से सुशोभित हो गया, सुगंधित जल सहित पुष्पों की वर्षा होने लगी, दिशाएँ निर्मल हो गईं।

बुद्धत्व-प्राप्ति

मार और मार की सेना को धैर्य से पराजित करके शाक्य मुनि ने परम तत्वों को जानने की इच्छा से ध्यान लगाया। ध्यान की समस्त विधियों पर पूरा अधिकार प्राप्त करने के बाद रात्रि के प्रथम प्रहर में उन्होंने अपने पूर्व जन्मों की परंपरा का स्मरण किया – "मैं कहाँ-कहाँ, कब-कब अवतीर्ण हुआ हूँ।" इस प्रकार उन्होंने सहस्त्रों जन्मों का प्रत्यक्ष स्मरण किया। अपने उन अवतारों में उन्होंने जो दया-कर्म किए थे और जिस प्रकार मृत्यु प्राप्त की थी, उन सबका प्रत्यास्मरण किया। उन्हें अनुभूति हुई कि यह सारा संसार केले के गर्भ के समान नितांत निस्सार है।



द्वितीय प्रहर में उस महामुनि ने दिव्य चक्षु प्राप्त किए। उन्होंने नीच-ऊँच कर्म करने वाले प्राणियों के उत्थान-पतन का प्रत्यक्ष अनुभव किया जिससे उनकी दयालुता और भी बढ़ गई। उन्होंने पापकर्म करने वालों की नारकीय वेदना और पीड़ा का अनुभव कर दुख का साक्षात्कार किया। उन्होंने देखा कि कर्म-बंधनों से

बँधे हुए प्राणी किस प्रकार दु:ख भोगते हैं, पर मर नहीं पाते और जब मरते हैं तो कैसे ये प्राणी निम्न योनियों में पुन: जन्म ग्रहण कर दु:ख भोगते हैं।

उन्होंने अनुभव किया कि संसार में छोटे-बड़े सभी जीव भूख और प्यास जनित दुखों से पीड़ित हैं। कुछ जीव हैं जो नरक के समान 'गर्भ' नामक सरोवर में गिरकर मनुष्य के रूप में जन्म लेकर दु:ख भोगते हैं। कुछ जीव हैं, जो पुण्य कर्म करके स्वर्ग जाते है और वहाँ काम की ज्वाला में जलते हैं और तृप्त होने के पूर्व ही स्वर्ग से गिर जाते हैं। उन्होंने जन्म, जरा और मृत्यु के मूल कारणों का साक्षात्कार किया। उन्हें लगा जैसे वायु के योग से अग्नि का एक कण भी सारे वन को जला देता है वैसे ही तृष्णायुक्त काम कर्म रूपी जंगल को जलाता रहता है। उन्होंने ध्यान में समझा कि तृष्णा का मूल कारण वेदना (संवेदना) है, जो इंद्रियों, वस्तुओं और मन के संयोग से उत्पन्न होती है। उन्हें बोध हुआ कि अविद्या के नष्ट होने पर ही संस्कार क्षीण होते हैं और परम पद का मार्ग प्रशस्त होता है। उन्हें प्रतीति हई कि उन्हें अब पूर्ण मार्ग का ज्ञान हो गया है।

रात्रि के चतुर्थ प्रहर में जब सारा चराचर जगत शांत था, महाध्यानी मुनि ने अविनाशी पद प्राप्त किया और वे सर्वज्ञ बुद्ध हो गए।

जैसे ही शाक्य मुनि बुद्ध हुए सारी दिशाएँ सिद्धों से दीप्त हो गईं और आकाश में दुंदुभि बजने लगी। बिना बादल बरसात होने लगी, मंद-मंद पवन प्रवाहित होने लगी, वृक्षों से फल-फूल बरसने लगे और स्वर्ग से पुष्प वर्षा होने लगी। चारों ओर धर्म छा गया।

इक्ष्वाकु वंश के मुनि ने सिद्धि प्राप्त कर ली और वे बुद्ध हो गए। यह जानकर देवता और ऋषिगण उनके सम्मान के लिए विमानों पर सवार होकर उनके पास आए और अदृश्य रूप में उनकी स्तुति करने लगे।

ध्यानावस्थित होकर महात्मा बुद्ध ने जीवन-मरण के कार्य-कारण संबंधों को भली-भाँति जान लिया था और मुक्ति प्राप्त कर ली थी। इस मुक्तावस्था में वे सात दिनों तक बैठे रहे। तभी उन्हें जगत को बोध प्रदान करने की अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया। तभी दो देवता आए और उन्होंने निवेदन किया— "हे भवसागर को पार करनेवाले मुनि, आप इस दु:खी जगत का उद्धार कीजिए। जैसे धनी धन बाँटता है, वैसे ही आप अपने गुण और ज्ञान को बाँटिए।" महात्मा बुद्ध ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार की। तभी अन्य दिशाओं से देवतागण आए और उन्होंने महामुनि को भिक्षा पात्र दिया। निकट से जाने वाले एक सार्थवाह के दो श्रेष्ठियों ने उन्हें भिक्षा प्रदान की।



तब उन्होंने अराड और उद्रक का स्मरण किया, परंतु तब तक वे दिवंगत हो चुके थे, अत: उन्होंने उपदेश देने के लिए उन पाँच भिक्षुओं का स्मरण किया जो उन्हें तप से भ्रष्ट मानकर छोड़कर चले गए थे। इस तरह संसार के अज्ञान रूपी अंधकार को मिटाने के लिए महात्मा बुद्ध ने काशी जाने की इच्छा की। वे अपने आसन से उठे, उन्होंने अपने शरीर को इधर-उधर घुमाया और बोधिवृक्ष की ओर प्रेम से देखा।

प्रश्न

1. अराड मुनि ने अविद्या किसे कहा है?
2. कठोर तपस्या में लगे सिद्धार्थ ने किस कारण भोजन करने का निर्णय लिया?
3. मार कौन था? वह बुद्ध को क्यों डरा रहा था?
4. सिद्धार्थ के बुद्धत्व प्राप्त करने पर प्रकृति में किस प्रकार की हलचल दिखाई पड़ी?



अध्याय 4

धर्मचक्र प्रवर्तन

0822CH04

काशी-गमन

बुद्धत्व को प्राप्त करने के बाद शाक्य मुनि को शांति की शक्ति का अनुभव हुआ। बुद्ध बनकर यद्यपि वे अकेले ही चल पड़े थे, परंतु ऐसा लग रहा था, जैसे कि उनके पीछे-पीछे बड़ा जनसमूह चला आ रहा हो। मार्ग में उन्हें एक शुद्धात्मा भिक्षु ने देखा वह उनके स्वरूप से प्रभावित होकर उनके निकट आया और विनयपूर्वक बोला— "हे अर्हत् ! आप जितेंद्रिय और आत्मवेत्ता प्रतीत होते हैं। लगता है, आपने संसार को जीत लिया है। पूर्ण चंद्र के समान अपका मुख-मंडल प्रकाशित हो रहा है। आपका मन शांत है। आप प्रबुद्ध और संतुष्ट प्रतीत हो रहे हैं। ऐसा लगता है कि जो कुछ जानने योग्य है उसे आप जान चुके हैं। आपके तप का तेज देदीप्यमान है। हे सौम्य! आपका नाम क्या है? आपका गुरु कौन है?"

भिक्षु द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर भक्त वत्सल भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया— "हे वत्स! मेरा कोई गुरु नहीं है। मैने निर्वाण प्राप्त कर लिया है। मुझे अब धर्म का स्वामी समझिए। मैंने वह सब कुछ जान लिया है जो जानने योग्य है और जिसे पहले किसी ने नहीं जाना है। मैंने शत्रु के समान सभी क्लेशों को जीत लिया है। इसलिए लोग मुझे 'बुद्ध' कहते हैं। मैं अब अमर धर्म की दुंदुभी बजाने काशी जा रहा हूँ। किसी सुख या यश के लिए नहीं, अपितु दु:खों से पीड़ित जनों के कल्याण के लिए वहाँ जा रहा हूँ क्योंकि पहले मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं मुक्त होकर दु:खी जनों के दुख दूर करूँगा, उन्हें मुक्त करूँगा।



जैसे दीपक के जलने मात्र से ही अंधकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही बुद्धत्व की प्राप्ति के पश्चात सभी इच्छाएँ स्वत: समाप्त हो जाती हैं। जैसे लकड़ी में अग्नि, आकाश में वायु और पृथ्वी में जल होना निश्चित है, वैसे ही काशी में उपदेश और गया में ज्ञान-प्राप्ति निश्चित है।" यह सुनकर भिक्षु ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और वह अपने मार्ग पर आगे चला गया।

शाक्य मुनि धीरे-धीरे काशी की ओर अग्रसर होने लगे। उन्होंने दूर से ही काशी को देखा जहाँ वरुणा और गंगा ऐसे मिल रही थीं जैसे दो सखियाँ मिल रही हों। वे वहाँ से मृगदाव मन (सारनाथ) गए, जहाँ सघन वृक्षों पर मोर बैठे हुए थे।

मृगदाव वन में वे पाँच भिक्षु रहते थे, जिन्होंने शाक्य मुनि को तप-भ्रष्ट भिक्षु मानकर उनका संग छोड़ दिया था। पाँचों भिक्षुओं ने जब शाक्य मुनि को आते हुए देखा, तो वो आपस में बातें करने लगे। उन्होंने निश्चय किया कि वे इस तप-भ्रष्ट का अभिवादन नहीं करेंगे। यदि यह पहले हमसे बोलेगा तभी हम इससे बात करेंगे।

पाँचों भिक्षु जब यह परामर्श कर रहे थे, तभी भगवान बुद्ध उनके समीप आ गए। जैसे ही वे उनके निकट आए पाँचों भिक्षु अपने पूर्व निश्चय के विपरीत एकदम खड़े हो गए। उन्होंने विनयपूर्वक उनका अभिवादन किया। किसी ने उनका भिक्षापात्र लिया, किसी ने उनका चीवर उठाया, किसी ने चरण धोने के लिए जल दिया और किसी ने बैठने के लिए आसन बिछाया।

आसन पर विराजमान होकर तथागत बुद्ध ने उन्हें उपदेश देना चाहा, परंतु मोहवश उन्होंने उपदेश ग्रहण करने से मना किया और कहा— "आपने तप त्याग दिया था, आप तत्व को नहीं जानते।" तब तथागत ने उन्हें समझाया और कहा— "जैसे विषयों में आसक्त लोग अज्ञानी हैं, वैसे ही अपने आपको क्लेश देने वाले



लोग भी अज्ञानी हैं। क्योंकि क्लेश द्वारा अमरत्व प्राप्त नहीं किया जा सकता।" उन्होंने आगे बताया, 'बोध' तपस्या से भिन्न तत्व है। देखो, जो तपस्या द्वारा अपने शरीर को क्षीण कर लेते हैं, वे तो व्यावहारिक ज्ञान भी नहीं पा सकते, तो उन्हें 'परमतत्व' का बोध भला कैसे हो सकता है? जैसे लकड़ी में स्थित अग्नि को उसे चीर-फाड़ कर नहीं, अपितु युक्ति से ही प्राप्त किया जा सकता है, वैसे ही शरीर की कष्ट देने से नहीं, अपितु योग की युक्तियों से ही बोध प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए मैंने कष्टकर तप और आसक्तिमय भोग दोनों को त्यागकर मध्य मार्ग का आश्रय लिया है और बोधि प्राप्त की है।

मेरे इस मध्य मार्ग का प्रकाशक सम्यक दृष्टि रूपी सूर्य है तथा सम्यक संकल्प रूपी रथ इस सुंदर मार्ग पर चलता है; सम्यक वाणी में विश्राम पाता है; सम्यक आचरण के उपवन में विहार करता है; सम्यक आजीविका ही उसका शुद्ध भोजन है; सम्यक व्यायाम (प्रयत्न) उसके सेवक हैं; सम्यक स्मृति रूपी मनोहारीनगर में वह शांति पाता है तथा सम्यक समाधि रूपी शय्या पर समाधानपूर्वक सोता है।"

तथागत ने आगे उन्हें समझाते हुए बताया— "यही मध्य मार्ग है, जो तीनों लोकों में 'अष्टांग योग' के नाम से विख्यात है और जिससे जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु से मुक्त हुआ जा सकता है।

मेरी दृष्टि में मध्य मार्ग के जो चार मूलभूत सत्य हैं, वे हैं— दु:ख, दु:ख का कारण, दु:ख का निरोध और दु:ख के निरोध के उपाय। मैंने दिव्य दृष्टि से ये आर्य सत्य जान लिए हैं और उनका अनुभव किया। दु:ख है, यह मैंने पहचाना और उसके कारणों को छोड़ा। इसी तरह दु:ख के निरोध का अनुभव किया और उसके उपायों के रूप में इस मार्ग की उद्‌भावना की है। मैंने इसी ज्ञान के आधार पर निर्वाण प्राप्त किया है। मैं अब बुद्ध हूँ।"

महात्मा बुद्ध के इन करुणायुक्त वचनों को प्रथम बार कौंडिन्य आदि पाँचों भिक्षुओं ने सुना और दिव्यज्ञान प्राप्त किया। अपने प्रथम प्रवचन के बाद सर्वज्ञ शाक्य मुनि ने पूछा— "हे नरोत्तमो! क्या तुम्हें ज्ञान हुआ?" तो कौंडिन्य ने कहा— "हाँ, भंते।" इसीलिए सभी भिक्षुओं में कौंडिन्य को ही प्रधान धर्मवेत्ता माना जाता है।



उसी समय पर्वतों पर उपस्थित यक्षों ने सिंहनाद किया और घोषणा की कि "जन-जन के सुख के लिए शाक्य मुनि ने 'धर्मचक्र' प्रवर्तित कर दिया है। शील इस धर्मचक्र के आरे (कीलक) हैं, क्षमा और विनय इसके धुरे हैं, बुद्धि और स्मृति इसके

पहिए हैं। सत्य और अहिंसा रूपी धुरी से युक्त यह धर्मचक्र अपूर्व है। धर्म के इसी यान में बैठकर यह लोक शांति प्राप्त कर सकता है।"

धर्मचक्र प्रवर्तन का उद्घोष धीरे-धीरे मृत्युलोक और देवलोक में व्याप्त हो गया। सर्वत्र सुख-शांति छा गई। निरभ्र आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी।

दीक्षादान

काशी के मृगदाव में धर्मचक्र का प्रवर्तन करने के बाद भगवान बुद्ध ने अपने निर्वाण धर्म में अश्वजित आदि पाँचों भिक्षुओं तथा कुछ अन्य मुनियों को दीक्षित किया। कुछ समय बाद वहाँ 'यश' नाम का कुलपुत्र आया। भगवान बुद्ध ने उसे उपदेश दिया। बुद्ध के वचन सुनकर उसे ऐसी शांति मिली, जैसे धूप में तपे व्यक्ति को नदी की जलधार में मिलती है। उस कुलपुत्र यश ने पूर्ण साधना से इसी शरीर से 'अर्हता' प्राप्त की। अपने आप आभूषणों से सज्जित देखकर जब उसे लज्जा का अनुभव हुआ, तो भगवान बुद्ध ने कहा— "हे वत्स, चाहे कोई आभूषणों से अलंकृत हो या सिर मुड़ाए हुए हो इससे कुछ भी अंतर नहीं पड़ता। जो समदर्शी हैं, जितेंद्रिय हैं, वे ही धर्म का आचरण कर सकते हैं। कोई चिह्न (जेंडर) धर्म का कारण नहीं होता।

वन में रहते हुए भी जो मन से विषयों को याद करते हैं, वे वन में भी गृहस्थ ही रहते हैं और जिन्होंने मोह और इंद्रियों पर विजय पा ली है, वे घर में रहकर भी संन्यासी बने रहते हैं।" यह बताने के बाद तथागत ने यश को 'भिक्षु' कह कर संबोधित किया और उसको तथा उसके साथ अन्य चौवन गृहस्थों को सद्धर्म में दीक्षित किया।

कुछ समय बाद इन शिष्यों में से 'अर्हता' को प्राप्त आठ श्रेष्ठ शिष्यों ने भगवान बुद्ध की अभ्यर्थना की। तथागत ने उनसे कहा— "हे भिक्षुओ! तुम सब कृतार्थ हो गए हो, सभी दु:खों से मुक्त हो। अब तुम लोग अलग-अलग दिशाओं में जाओ, भ्रमण करो, दयाभाव से दीनहीनों का कल्याण करो, उन्हें सद्धर्म का उपदेश दो। मैं भी अब महऋषियों की नगरी गया जाना चाहता हूँ। वहाँ विभिन्न प्रकार की सिद्धियों के मद से उन्मत काश्यप मुनि को अपने विनय धर्म से जीतना चाहता हूँ।"



इस प्रकार सद्धर्म के प्रचार के लिए अपने शिष्यों को विभिन्न दिशाओं में विदा करके तथागत भी गया के लिए चल पड़े।

कुछ समय बाद भगवान बुद्ध गया पहुँचे। वे वहाँ से सीधे काश्यप मुनि के आश्रम में गए। वहाँ जाकर उन्होंने काश्यप मुनि से अपने रहने के लिए कुछ स्थान माँगा। काश्यप मुनि ने उनका स्वागत तो किया, परंतु ईर्ष्यावश उन्हें मारने की इच्छा से एक ऐसी अग्निशाला में रहने के लिए कहा, जिसमें एक भयंकर साँप रहता था। तथागत निर्विकार भाव से अग्निशाला में गए और शांतिपूर्वक एक वेदी पर बैठ गए। महात्मा बुद्ध को अग्निशाला में निर्भय, अक्षुब्ध और शांत बैठा देखकर वह सर्प बाहर आया और उसने फूत्कार की। उसके विष की ज्वाला से सारी अग्निशाला जलने लगी परंतु महात्मा बुद्ध निर्विकार भाव से बैठे रहे। उन्हें विष की अग्नि ने स्पर्श भी नहीं किया।

महासर्प ने जब भगवान तथागत को शांत मुद्रा में बैठा देखा तो वह आश्चर्यचकित होकर प्रणाम करने लगा। आश्रमवासी अग्निशाला को जलता हुआ देखकर चिल्लाने लगे— "अरे! भिक्षु जल गया, भिक्षु जल गया।" परंतु जब सुबह हुई तो भगवान बुद्ध ने उस महासर्प को अपने भिक्षापात्र में रखा और उसे लेकर काश्यप मुनि के पास गए। भिक्षा पात्र में उस भयंकर महासर्प को विनीत भाव में बैठा देखकर काश्यप मुनि समझ गए कि यह मुनि मुझसे बहुत बड़ा है। उन्होंने तथागत को प्रणाम किया और उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया।

काश्यप मुनि के मन-परिवर्तन की बात सुनकर उनके पाँच सौ शिष्यों ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार किया। इसी तरह काश्यप मुनि के भाई 'गय' और 'नदी' भी भगवान बुद्ध की शरण में आए। तीनों काश्यप बंधुओं और उनके शिष्यों को भगवान बुद्ध ने 'गय' शीर्ष पर्वत पर निर्वाणधर्म का उपदेश दिया। उनके उपदेशों को सुनकर हज़ारों भिक्षुओं को अतिशय आनंद प्राप्त हुआ।

तभी भगवान बुद्ध को याद आया कि उन्होंने मगधराज बिंबसार को वचन दिया था कि जब उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हो जाएगा तो वे उन्हें नए धर्म में दीक्षित करेंगे और उपदेश देंगे। इसलिए उन्होंने सभी काश्यपों को साथ लिया और मगध की राजधानी राजगृह की ओर प्रस्थान किया।



कुछ समय बाद भगवान बुद्ध अपने समस्त शिष्यों के साथ राजगृह के वेणुवन में पहुँचे और वहीं विश्राम करने लगे। मगधराज ने जब सुना कि महात्मा बुद्ध

वेणुवन में पधारे हैं, तो वे अत्यंत प्रसन्न हुए और अपने मंत्रियों तथा नगरवासियों के साथ उनके दर्शन के लिए चल पड़े। मगधराज मुनि श्रेष्ठ को देखते ही अपने रथ से उतर पड़े और विनयपूर्वक उनके पास पहुँचे। सिर झुकाकर प्रणाम किया और आज्ञा मिलने पर भूमि पर बैठ गए।



वहाँ आए सभी लोग काश्यप बंधुओं को महात्मा बुद्ध के शिष्य के रूप में देखकर आश्चर्यचकित रह गए। बुद्ध ने यह देखकर काश्यप से पूछा— "भंते, तुमने अग्नि की पूजा क्यों छोड़ दी?"काश्यप ने भरी सभा के सामने हाथ जोड़कर कहा— "अग्नि की पूजा करने से और उसमें आहुति देने से पुन: संसार में जन्म लेने की प्रवृत्ति बनी रहती है जिसके कारण शारीरिक और मानसिक क्लेश होता है। इसीलिए मैंने अग्नि-उपासना छोड़ दी। इससे जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति नहीं मिल सकती।" अपने शिष्य के ये वचन सुनकर भगवान बुद्ध ने उनसे कहा— "हे महाभाग, तुम धन्य हो। तुमने उत्तम धर्म स्वीकार किया है। जैसे धनी व्यक्ति अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन करते हैं, तुम अपनी दिव्य शक्ति के ऐश्वर्य का प्रदर्शन करो।"



यह सुनकर काश्यप ने अनेक यौगिक चमत्कार दिखाए जैसे आकाश में उड़ना, बैठना, सोना, अग्नि के समान जलना आदि। इस प्रकार के अनेक

चमत्कार प्रदर्शित कर काश्यप ने भगवान बुद्ध को हाथ जोड़े और सबके सामने कहा— "मैं आपका शिष्य हूँ।"

यह सब कुछ देख और सुनकर मगधराज और सभी मगधवासी आश्चर्यचकित हो गए और समवेत स्वर में बोल पड़े— "बुद्ध सर्वज्ञ हैं।"

इसके बाद भगवान बुद्ध ने जिज्ञासु मगधराज को अनात्मवाद का उपदेश दिया। उनको बताया जैसे सूर्यकांत मणि और ईंधन के संयोग से चेतना का जन्म होता है। बीज से उत्पन्न होने वाला अंकुर जैसे बीज से भिन्न भी है और अभिन्न भी, वैसे ही शरीर इंद्रिय और चेतना परस्पर भिन्न भी हैं और अभिन्न भी।

भगवान बुद्ध के उपदेशों से मगधराज बिंबसार ने परमार्थ ज्ञान और पूर्ण धर्म दृष्टि प्राप्त की। उनके साथ आए मगध के अन्य व्यक्ति भी कृतकृत्य हो गए।

तथागत का उपदेश सुनकर मगधराज अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने परम शांति का अनुभव किया। उन्होंने मुनि के निवास के लिए वेणुवन भेंट कर दिया। फिर उनसे आज्ञा लेकर अपने भवन की ओर प्रस्थान किया।

एक दिन भगवान बुद्ध के जितेंद्रिय शिष्य अश्वजित भिक्षा के लिए नगर में गए। उनके मुख की शांति और कांति को देखकर अनेक नागरिक उनके प्रति आकर्षित हुए। वहीं कपिल संप्रदाय के एक संन्यासी अपने शिष्यों के साथ आए और अश्वजित को देखकर उनसे पूछने लगे— "हे सौम्य! आपको देखकर हम सभी आश्चर्यचकित हैं। आपके गुरु कौन हैं? उनकी क्या शिक्षा है?" अश्वजित ने कहा, "इक्ष्वाकुवंश के सुगत बुद्ध मेरे गुरु हैं। वे विद्वान हैं और मैं तो अज्ञानी हूँ। मैं अभी कुछ दिन पूर्व ही उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म में दीक्षित हुआ हूँ। अत: मैं आपको उनकी शिक्षा बताने में तो असमर्थ हूँ, फिर भी संक्षेप में कहता हूँ। उन्होंने उपदेश दिया है कि सभी धर्म किसी न किसी निमित्त से ही उत्पन्न होते हैं। बिना कारण कुछ भी नहीं होता।"

अश्वजित के उपदेशों से ही उपतिष्य नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण को भी ज्ञान प्राप्त हो गया। उसका अंत:करण शुद्ध हो गया और वह वेणुवन की ओर जाने लगा। मार्ग में उसे मौद्गल्यायन नाम के ब्राह्मण मिले। उन्होंने उपतिष्य के प्रसन्न मुख को देखकर पूछा— "अरे! आज तो तुम भिन्न पुरुष से प्रतीत हो रहे हो। क्या तुम्हें ज्ञान-प्राप्ति हो गई है? ऐसी शांति और प्रसन्नता अकारण नहीं होती। बताओ क्या बात है?" तब उन्होंने बुद्ध के शिष्य से जो उपदेश सुने थे, वे मौद्गल्यायन को बता दिए। उसका कुछ ऐसा प्रभाव हुआ कि मौद्गल्यायन को भी सम्यक दृष्टि प्राप्त हो गई। तब दोनों अपने-अपने शिष्यों के साथ भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए वेणुवन गए।



इन दोनो को शिष्य मंडली के साथ वेणुवन में आते देखकर महामुनि बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा— "ये दोनों मेरे प्रमुख शिष्य हैं। उनमें से एक ज्ञानी है, दूसरा दिव्य शक्ति संपन्न है।" जब वे निकट आ गए तो भगवान बुद्ध ने उन दोनों से कहा— "शांति की इच्छा वाले साधुओ! आपका स्वागत है। आप उत्तम धर्म को भली-भाँति समझिए।" तथागत के प्रवचनों को सुनकर दोनों साधु मुग्ध हो गए और उन्होंने अपनी जटा और दंड त्याग दिए और काषाय वस्त्र धारण कर लिए। उन्होंने अपने शिष्यों के साथ मस्तक झुकाकर भगवान बुद्ध को नमस्कार किया। उनके आदेशों का पालन किया और क्रमश: साधना करके परम पद प्राप्त किया।

तथागत की ख्याति सुनकर काश्यप वंश के एक धनी ब्राह्मण ने अपनी पत्नी और संबंधियों को त्याग दिया और वह निर्वाण की इच्छा से एक दिन भगवान बुद्ध के पास आ गया। उसने प्रणाम करके निवेदन किया, "हे गुरुवर, मैं आपका शिष्य हूँ। आप मेरा मार्गदर्शन कीजिए।" नवागत शिष्य की बातें सुनकर भगवान बुद्ध ने उसे अपने पास बैठाया और उपदेश दिया। उसने अपनी प्रखर बुद्धि से तथागत के उपदेशों को भली-भाँति हृदयंगम किया। बाद में इन्हें ही 'महाकाश्यप' के नाम से प्रसिद्धि मिली।



अनाथपिंडद की दीक्षा

एक बार उत्तर की ओर से कोसल देश का एक धनी गृहपति वेणुवन आया। गरीबों को दान देना उसका स्वभाव था, इसलिए वह सुदत्त नाम से प्रसिद्ध था। जब उसने सुना कि महामुनि यहीं निवास कर रहें हैं तो उनके निकट गया और उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। तथागत ने उसका श्रद्धाभाव देखकर कहा— "हे सौम्य! तुम धर्म को जानते हो। दर्शन की लालसा से रात्रि के समय भी अपनी निद्रा को त्यागकर तुम यहाँ आए हो। इसलिए तुम नैष्ठिक पद के अधिकारी हो। आओ, तुम उसी परम पद के दर्शन करो। निष्काम दान करने से इस लोक में यश और परलोक में उत्तम फल मिलते हैं, अत: तुम दान करो, शील और शिष्टाचार का पालन करो, विषयों की आसक्ति त्यागकर सभी प्रकार के दुखों से मुक्त हो जाओ।"

महामुनि के उपदेश सुनकर सुदत्त गृहस्थ होते हुए भी तत्वज्ञान प्राप्त कर सका और जीवन-मुक्त हो गया, क्योंकि तत्व-बोध के लिए वनवास करना आवश्यक नहीं। उसने आदरपूर्वक भगवान बुद्ध से निवेदन किया, "मैं श्रावस्ती नगर का निवासी हूँ। मैं वहाँ आपके लिए एक विहार बनाना चाहता हूँ। आप जैसे अनासक्त के लिए वन और राजभवन दोनों ही समान हैं। फिर भी मुझ पर दया कर आप वहाँ पधारें और निवास करें।"

भगवान बुद्ध ने सुदत्त का अनुरोध स्वीकार किया और अपने एक शिष्य उपतिष्य को उसके साथ भेज दिया। सुदत्त और उपतिष्य धीरे-धीरे कोसल राज्य की राजधानी श्रावस्ती पहुँचे और विहार बनवाने के लिए उपयुक्त भूमि खोजने लगे। अंत में उन्हें मनोहर वृक्षों से भरा जेतवन दिखाई दिया जो उन्हें विहार के लिए उपयुक्त लगा। उन्होंने उस वन के स्वामी के साथ भूमि खरीदने के लिए बातचीत की। उस वन का स्वामी बड़ा लोभी था। उसने कहा कि यदि तुम इस भूमि को धन से ढक दो तो भी मैं इसे बेचने के लिए तैयार नहीं हूँ। सुदत्त ने उसे समझाया कि मैं यह भूमि विहार बनाने के लिए खरीदना चाहता हूँ। वह बड़ी मुश्किल से भूमि बेचने के लिए तैयार हुआ और बहुत धन लेकर उसने वह भूमि बेच दी।



जब सुदत्त ने उदारतापूर्वक इस भूमि के लिए प्रभूत धनराशि प्रदान की तो वन के स्वामी जेत का मन भी बदल गया। उसके हृदय में भगवान बुद्ध के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया। इसलिए उसने शेष वन भी तथागत के विहार के लिए दे दिया। सुदत्त ने विहार निर्माण का कार्य उपतिष्य की देखभाल में प्रारंभ कर दिया। धीरे-धीरे विशाल विहार बनकर तैयार हो गया।

पिता-पुत्र मिलन

भगवान बुद्ध के ज्ञान से प्रभावित होकर अन्य-दर्शनों के आचार्य भी उनके शिष्य बन गए। उनके धर्म का प्रचार-प्रसार होता चला गया। वे काफ़ी समय तक राजगृह में निवास करते रहे। एक दिन उन्हें याद आया कि उन्होंने अपने पिता के मंत्रियों को वचन दिया था कि ज्ञान प्राप्त करके वे कपिलवस्तु लौटेंगे। इसलिए उन्होंने अपने पिता शुद्धोदन के राज्य में जाने का विचार किया और अनेक शिष्यों के साथ राजगृह से कपिलवस्तु के लिए प्रस्थान किया।

कुछ दिनों में वे अपनी शिष्य मंडली के साथ अपने पिता की नगरी के समीप पहुँचे और वहीं ठहर गए।शुद्धोदन के पुरोहित और अमात्यों को जब अपने गुप्चरों से यह सूचना मिली कि कुमार सिद्धार्थ बुद्ध बनकर नगर के समीप आ गए हैं, तो उन्होंने इसकी सूचना राजा को दी। राजा अपने पुत्र के आगमन का समाचार सुनकर प्रसन्न हो गए। अनेक पुरवासियों के साथ वे अपने पुत्र से मिलने के लिए चल पड़े। उनकी आँखों से आनंद के आँसू बह रहे थे।

राजा ने दूर से ही देखा– अनेक शिष्यों के बीच परिव्राजक वेश में उनका पुत्र विराजमान है, तो वे रथ से उतर गए और पैदल ही उनके पास पहुँचे।

मुनि वेश में अपने पुत्र को देखकर राजा शुद्धोदन का मन विह्वल हो गया, उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई। विस्मय में पड़कर वे न तो उन्हें पुत्र कह सके और न ही भिक्षु। अपने आपको राजसी वस्त्रालंकारों से विभूषित और पुत्र को भिक्षुवेश में देखकर उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली, किंतु ममता और स्नेह से रहित अपने पुत्र को देखकर राजा को वैसी ही निराशा हुई,जैसी कि किसी प्यासे को सूखा तालाब देखकर होती है। राजा ने अपने पुत्र को देखा परंतु पुत्र-दर्शन का सुख उन्हें नहीं मिला।

राजा शुद्धोदन सोचने लगे, यदि वह मांधाता की भाँति संपूर्ण पृथ्वी का स्वामी होता तो क्यों भिक्षा माँगता फिरता? कैसी विडंबना है, जो मेघ के समान धैर्यवान है, सूर्य के समान प्रतापी है और चंद्रमा के समान कांतिमान है, वह भिक्षा माँग रहा है!



भगवान बुद्ध ने अपने पिता को देखा, उनके मनोभावों को समझा और अनुभव किया कि वे अभी भी उन्हें अपना पुत्र मान रहे हैं। अत: उनके भ्रम के निवारण के लिए उन्होंने कुछ चमत्कार किए। उनके यौगिक चमत्कारों से पिता बड़े प्रभावित और आनंदित हुए। फिर सूर्य के समान स्थिर होकर तथागत ने राजा शुद्धोदन को धर्मोपदेश दिया। उन्होंने कहा— ''हे राजन! अब आपको किसी प्रकार का

शोक नहीं करना चाहिए। आप अब पुत्र-प्रेम त्याग कर धर्म के आनंद का अनुभव कीजिए। आप उस बोधि रूपी अमृत को ग्रहण कीजिए, जो आज तक किसी पुत्र ने अपने पिता को नहीं दिया।"

उन्होंने अपने पिता को समझाया— "यह सारा संसार कर्म से बँधा हुआ है, अत: आप कर्म का स्वभाव, कर्म का कारण, कर्म का विपाक (फल) और कर्म का आश्रय, इन चारों के रहस्यों को समझिए, क्योंकि कर्म ही है, जो मृत्यु के बाद भी मनुष्य का अनुगमन करता है। आप इस सारे जगत को जलता हुआ समझकर उस पथ की खोज कीजिए जो शांत है और ध्रुव है, जहाँ न जन्म है, न मृत्यु है, न श्रम है और न दु:ख।"

तथागत के चमत्कारों को देखकर और उनके उपदेशों को सुनकर राजा शुद्धोदन का चित्त शुद्ध हो गया, वे रोमांचित हो गए। उन्होंने हाथ जोड़कर तथागत से निवेदन किया— "हे आर्य! आज मैं धन्य हूँ। आपने कृपाकर मुझे मोह से मुक्त किया है। हे तात! आपका जन्म सफल है। अब मैं सचमुच पुत्रवान हूँ। आपने राज्यलक्ष्मी और स्वजनों का त्याग किया, दुष्कर तप किया और मुझ पर कृपा की, यह सब उचित ही है। आप चक्रवर्ती राजा होकर भी हम सब लोगों को उतना सुख नहीं दे सकते थे, जितना आप आज दे रहे हैं। आपने अपने ज्ञान और सिद्धियों से भव-चक्र को जीत लिया है। बिना राज्य के ही आप संपूर्ण लोकों के सम्राट की भाँति सुशोभित हैं।" यह कहकर राजा ने भगवान बुद्ध को सादर प्रणाम किया।

भगवान बुद्ध के योग, ऐश्वर्य तथा उनके पिता द्वारा किए गए सत्कार को देखकर अनेक लोगों ने घर छोड़ने का निश्चय किया। अनेक राजकुमार निर्वाण धर्म का उपदेश सुनकर विरक्त हो गए। आनंद, नंद, कृमिल, अनिरुद्ध, कुंडधान्य ने उनसे दीक्षा ग्रहण की और गृह त्याग किया। तथागत की शिक्षा से देवदत्त तथा गुरुपुत्र उदायि ने भी यही किया। अत्रिनंदन उपालि ने भी दीक्षा ग्रहण की राजा शुद्धोदन ने भी अपना राज्य-भार अपने भाइयों को सौंप दिया और स्वयं राजर्षियों की तरह रहने लगे।

इसके बाद राजपुत्र सर्वार्थ सिद्ध (सिद्धार्थ) ने अपना लक्ष्य सिद्ध करके अपने दीक्षित शिष्यों तथा पुरवासियों के साथ नगर में प्रवेश किया। अश्रु बहाते हुए पुरवासियों ने पुष्प वर्षा करके उनका स्वागत किया। यह समाचार सुनकर राजभवन की स्त्रियाँ द्वारों और वातायनों की ओर दौड़ीं। काषाय वस्त्रधारी होने पर भी उन्हें सांध्यकालीन बादलों से आधे ढके सूरज के समान चमकते देखकर स्त्रियाँ रोने लगीं और विह्वल होकर उन्होंने भगवान को प्रणाम किया।



नगर और राजभवन की स्त्रियाँ अपने राजकुमार को मुनि वेश में देखकर तरह-तरह से विलाप कर रही थीं। पत्नी यशोधरा भी उन्हें देखकर अत्यंत शोक विह्वल हो गई। किंतु बुद्ध को न तो पत्नी का प्रेम विचलित कर सका और न पुत्र राहुल का। भगवान बुद्ध अनासक्त भाव से भिक्षा माँगते हुए चलते रहे और शांतिपूर्वक धीरे-धीरे न्यग्रोध वन जा पहुँचे। वहाँ वे संसार के जीवों के कल्याण के लिए चिंतन करने लगे।



जेतवन

कपिलवस्तु में कुछ दिन रहने तथा अनेक व्यक्तियों को दीक्षित करने के बाद भगवान बुद्ध ने प्रसेनजित के राज्य कोसल देश की ओर प्रस्थान किया। श्रावस्ती पहुँचकर वे जेत वन पहुँचे, जो अनेक श्वेत भवनों और अशोक वृक्षों से सुसज्जित था। स्वर्ण और श्वेत मालाओं से अलंकृत जलकलश लेकर सुदत्त ने तथागत की पूजा की और जेत वन उनको समर्पित किया।



तथागत के आगमन का समाचार सुनकर कोसल नरेश प्रसेनजित उनके दर्शनों के लिए जेत वन आए। उन्होंने भगवान को श्रद्धापूर्वक नमस्कार किया और निवेदन किया— "हे मुने! कोसलवासियों का यह परम सौभाग्य है कि आप यहाँ पधारे। जैसे पुष्पों की संगति से वायु सुगंधित हो जाती है, वैसे ही आपके निवास से यह वन पवित्र हो गया है। आप यहाँ सुखपूर्वक निवास करें और हम सब पर अनुग्रह करें।"

प्रसेनजित की प्रार्थना सुनकर भगवान बुद्ध ने उनसे कहा— "हे राजर्षि, आपकी बुद्धि स्थिर है, तभी साधुओं में आपकी श्रद्धा है। यदि आप उज्ज्वल यश की कामना करते हैं तो धर्मपूर्वक प्रजा का पालन कीजिए, जनता को कभी उत्पीड़ित न कीजिए। पापियों की संगति त्यागकर सुमार्ग का अनुसरण कीजिए।" तथागत ने प्रसेनजित को अनेक उपदेश दिए और उन्हें अज्ञान के अंधकार से मुक्त किया। भगवान बुद्ध के उपदेशों से प्रसेनजित को धर्मतत्व का बोध हुआ और उन्होंने श्रद्धापूर्वक उनसे दीक्षा ग्रहण की।

प्रसेनजित को दीक्षित हुआ देखकर कुछ तीर्थक साधुओं ने राजा के तत्वबोध पर शंका व्यक्त की और बुद्ध के उपदेशों को चुनौती दी। इस पर राजा ने तथागत से प्रार्थना की कि वे शंका का समाधान करें।

राजा प्रसेनजित की प्रार्थना सुनकर तथागत ने साधुओं की शंकाओं का समाधान किया। सभी साधुओं ने उन्हें प्रणाम किया और दीक्षा ग्रहण की। कोसल से तथागत राजगृह आए। उन्होंने वहाँ ज्योतिष्क, जीवक, शूर,श्रोण, अंगद आदि को उपदेश दिए और उन्हें अपने संघ में दीक्षित किया।

राजगृह से तथागत गांधार देश गए। वहाँ पुष्कर नाम का राजा राज करता था। पुष्कर ने भगवान से ज्ञान प्राप्त किया। परिणामस्वरूप उसमें वैराग्य भाव का उदय हुआ। उसने अपना राज-पाट त्याग दिया और संन्यास ग्रहण कर लिया। गांधार देश से वे विपुल पर्वत पर आए और वहाँ हेमवत और साताग्र नाम के यक्षों को उपदेश दिए। वहाँ से वे जीवक के आम्रवन में आए और विश्राम किया।

वहाँ से अनेक प्रमुख नगरों का भ्रमण करते हुए आपण नगर पहुँचे। वहीं क्रूर कर्मों में लगे अँगुलिमाल को अपने धर्म में दीक्षित किया और उसने दया तथा मित्रता के नए धर्म को स्वीकार किया।

इसके बाद वे वाराणसी आए, जहाँ असित मुनि के भांजे कात्यायन निवास करते थे। मृत्यु से पहले असित उन्हें बुद्ध के विषय में बता चुके थे, अत: कात्यायन ने भगवान बुद्ध के वहाँ आने पर सादर उनसे दीक्षा ग्रहण की।

इस प्रकार धीरे-धीरे भगवान बुद्ध का यश चारों दिशाओं में छा गया। इससे देवदत्त को बहुत ईर्ष्या होने लगी। ईर्ष्या के कारण वह ध्यान और संयम खो बैठा और अनेक अनुचित कार्य करने लगा। उसने पहले संघ में मतभेद खड़े करने का कुचक्र चलाया, परंतु इसमें सफलता नहीं मिली तो उसने तथागत को समाप्त करना चाहा। जब तथागत गृध्रकूट पर्वत पर विराजमान थे तब देवदत्त ने उन पर एक शिलाखंड गिराया, परंतु उससे भगवान को कोई क्षति नहीं हुई।



देवदत्त को संघ में मतभेद उत्पन्न करने में सफलता नहीं मिली और न ही वह भगवान बुद्ध की हत्या कर सका। जब भगवान राजगृह मार्ग से अपने शिष्यों के साथ जा रहे थे, तो उसने उन पर एक मदमत्त हाथी छुड़वा दिया। प्रलयकालीन काले बादलों जैसा हाथी आँधी की तरह दौड़ता हुआ राजपथ पर आ गया। जो भी उसके मार्ग में आता वह उसे मारने दौड़ता। चारों ओर हाहाकार मच गया। उधर से शिष्यों के साथ भगवान बुद्ध को आते देखा, तो लोग चिल्लाने लगे तथा उन्हें बचाने के लिए दौड़ने लगे, परंतु कोई भी उस हाथी के पास नहीं जा सकता था।

तथागत की हत्या के लिए वह हाथी उसी ओर आ रहा था, जिस ओर से वे आ रहे थे। अट्टालिकाओं से स्त्रियाँ और दूर खड़े अन्य पुरुष चिल्लाकर उन्हें रोकना चाहते थे, परंतु तथागत शांत और निर्विकार भाव से आगे बढ़ते जा रहे थे। दूर से ही मदमत्त हाथी को आते देखकर पीछे-पीछे चलने वाले अनेक शिष्य भाग गए। परंतु बुद्ध आगे बढ़ते ही गए। उनके पीछे-पीछे केवल उनके परम शिष्य आनंद चलते गए, जैसे वस्तु की प्रकृति वस्तु के साथ रहती है वैसे ही आनंद उनके साथ थे।

भगवान बुद्ध को सामने देखकर मदोन्मत्त हाथी एकदम शांत और स्वस्थ हो गया और वह भगवान के सामने सिर झुकाकर बैठ गया। भगवान ने उस हाथ का स्पर्श किया और उसे उपदेश दिए— "हे गजराज! निरपराध प्राणियों की क्यों हत्या कर रहे हो? उससे तो दुख ही होगा, किसी को कष्ट मत दो।"



तथागत को देखकर और उनके उपदेश सुनकर हाथी ने शिष्य के समान उन्हें प्रणाम किया। यह देखकर सभी लोग भगवान बुद्ध और हाथी को घेर कर चारों ओर खड़े हो गए और उनकी प्रशंसा करने लगे। जिनके हृदय में धर्म के लिए कोई श्रद्धा नहीं थी, उनके हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो गई और जिनके हृदय में थोड़ी श्रद्धा थी, वह और भी दृढ़ हो गई।

राजमहल की अट्टालिकाओं पर खड़े सम्राट अजातशत्रु यह सब देख रहे थे। उनका हृदय भगवान बुद्ध और उनके द्वारा प्रकाशित धर्म के प्रति श्रद्धाभाव से भर गया और उनमें उनका पूर्ण विश्वास हो गया।

आम्रपाली के उद्यान में

कुछ समय बाद तथागत राजगृह से पाटलिपुत्र आए। उस समय मगधराज के मंत्री वर्षाकार लिच्छवियों को शांत करने के लिए एक दृढ़ दुर्ग बनवा रहे थे। तथागत ने देखा कि उस दुर्ग के निर्माण के लिए अपार धनराशि आ रही है तो उन्होंने भविष्यवाणी की— "शीघ्र ही यह नगर विश्व का महत्वपूर्ण नगर होगा। और सर्वत्र ख्याति प्राप्त करेगा।" तब मगधराज के मंत्री वर्षाकार ने भगवान बुद्ध की पूजा की और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किए।

इसके बाद तथागत गंगा की ओर गए। नगर के जिस द्वार से वे गंगा तट गए थे, वर्षाकार ने उस द्वार का नाम 'गौतम द्वार' रखा। गंगा पार करने के बाद तथागत कुटी नामक ग्राम में आए और धर्म का उपदेश दिया। कुछ समय वहाँ रहकर नंदिग्राम गए। वहाँ किसी कारण अनेक लोग मर गए थे। तथागत ने मृत व्यक्तियों के संबंधियों को उपदेश दिए और सांत्वना दी। वहाँ वे एक रात रहे और फिर दूसरे दिन वैशाली नगरी के लिए प्रस्थान किया।

वैशाली पहुँचकर उन्होंने उस समय की सर्वाधिक सुंदर स्त्री वैशाली की नगरवधू आम्रपाली के उद्यान में निवास किया। जब आम्रपाली ने सुना कि भगवान बुद्ध उसके उद्यान में निवास कर रहे हैं तो वह बहुत प्रसन्न हुई और उनके दर्शनों के लिए तैयार हुई। उसने अलक्तक, अंजन, अंगराग तथा आभूषणों को त्याग दिया। अत्यंत विनम्र भाव से कुलवधुओं के समान श्वेत वस्त्र धारण किए और तथागत के दर्शन के लिए चल पड़ी।



रूप और यौवन से संपन्न आम्रपाली वनदेवी के समान अपने उद्यान में पहुँची और रथ से उतरकर पैदल ही उधर जाने लगी, जहाँ भगवान बुद्ध अपनी शिष्य मंडली के साथ बैठे थे।



भगवान बुद्ध ने आम्रपाली को आते देखकर अपने शिष्यों को सावधान किया और कहा— "देखो आम्रपाली यहीं आ रही है। तुम सब बोध की औषधि से अपने आपको संयमित रखना और ज्ञान में स्थिर रहना। तुम प्रज्ञा रूपी बाण और शक्ति रूपी धनुष धारण करो और स्मृति रूपी कवच पहनकर अपनी रक्षा करो।"

जब तथागत अपने शिष्यों को इस प्रकार उद्‌बोधित कर रहे थे, तभी आम्रपाली हाथ जोड़कर उनके सामने उपस्थित हो गई। अपने उद्यान में एक वृक्ष के नीचे नेत्र बंद किए बैठे मुनि के दर्शन कर वह बहुत प्रसन्न हुई। श्रद्धा तथा शांत भाव से उसने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया। फिर मुनि की आज्ञा प्राप्त कर हाथ जोड़कर वह उनके सामने बैठ गई।

भगवान बुद्ध ने आम्रपाली को उपदेश देते हुए कहा— "हे सुंदरी, तुम्हारा आशय पवित्र है, क्योंकि तुम्हारा मन शुद्ध है। तुम्हारा चित्त धर्म की ओर प्रवृत्त है। यही तुम्हारा सच्चा धन है, क्योंकि इस अनित्य संसार में धर्म ही नित्य है। देखो, आयु यौवन का नाश करती है, रोग शरीर का नाश करता है और मृत्यु जीवन का नाश करती है परंतु धर्म का नाश कोई नहीं कर सकता।"

यद्यपि आम्रपाली नवयुवती थी, फिर भी उसमें बुद्धि की गंभीरता और आशय की पवित्रता थी, इसीलिए उसने भगवान बुद्ध के उपदेशों को प्रसन्नतापूर्वक सुना। इससे उसके मन की समस्त वासनाएँ समाप्त हो गईं और उसे अपनी वृत्ति से घृणा होने लगी। वह तथागत के चरणों में गिर पड़ी और धर्म की भावना से भर उसने भगवान से निवेदन किया— "हे देव, आपने अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है। आपने संसार को पार कर लिया है। हे साधो, आप मुझ पर दया करें और धर्म लाभ के लिए मेरी भिक्षा स्वीकार करें, मेरे जीवन को सफल करें।"

भगवान बुद्ध ने आम्रपाली की सच्ची भक्ति-भावना को जानकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

प्रश्न

1. बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद सिद्धार्थ ने प्रथम उपदेश कहाँ और किन्हें दिया?
2. अष्टांग योग की प्रमुख बातों का उल्लेख कीजिए।
3. भगवान बुद्ध काशी से राजगृह क्यों आए?
4. प्रसेनजित ने भगवान बुद्ध से क्या निवेदन किया?
5. तथागत ने कर्म के बारे में शुद्धोदन को क्या समझाया?
6. आम्रपाली कौन थी? तथागत ने उसे क्या समझाया?



अध्याय 5

महापरिनिर्वाण

निर्वाण की ओर

भगवान बुद्ध के उपदेश सुनकर और अपना निमंत्रण स्वीकार हो जाने के बाद आम्रपाली ने भगवान बुद्ध से विदा माँगी। भगवान बुद्ध की आज्ञा पाकर उसने उन्हें प्रणाम किया और अपने भवन चली गई।

इसी समय लिच्छवि सामंतों ने भी सुना कि भगवान बुद्ध आम्रपाली के उद्यान में विराजमान हैं, अत: वे सब उनके दर्शन के लिए चल पड़े। उनमें से कुछ सुसज्जित हाथी-घोड़ों पर और कुछ रथों पर सवार होकर आए। आम्रपाली के उद्यान के पास पहुँचकर वे अपने वाहनों से उतर गए और भगवान बुद्ध के निकट जाकर नमस्कार करके धरती पर बैठ गए।

भगवान बुद्ध ने उन्हें उपदेश देते हुए कहा— "धर्म में आप लोगो की श्रद्धा आपके राज्य, बल और रूप से भी अधिक मूल्यवान है। मैं वृज्जियों को भाग्यशाली मानता हूँ जिन्हें आप जैसे सत्यार्थी और धर्मज्ञ राजा प्राप्त हुए हैं। आप सभी शीलवान हैं और शील ही स्वर्ग मार्ग का संकेतक है। वही स्वर्ग ले जाने वाली नौका है, इसलिए शील द्वारा अपने चित्त को शुद्ध कीजिए। अज्ञान और अंहकार को दूर कीजिए।"

भगवान बुद्ध के उपदेश सुनकर सभी लिच्छवि सामंतों ने उन्हें फिर सिर झुकाकर प्रणाम किया और भिक्षा के लिए उन्हें अपने घरों पर आमंत्रित किया। तथागत ने उन्हें बताया कि इसके लिए वे पहले ही आम्रपाली का निमंत्रण स्वीकार कर उसे वचन दे चुके हैं। यह सुनकर लिच्छवियों को बुरा लगा। परंतु महामुनि के उपदेशों के कारण वे शांत हो गए और प्रणाम कर अपने-अपने घर चले गए।



दूसरे दिन प्रात:काल आम्रपाली ने भगवान बुद्ध का अतिथि-सत्कार किया। आम्रपाली के घर से भिक्षा लेकर भगवान बुद्ध चतुर्मास वास के लिए वेणुमती नगर चले गए। वहाँ वर्षाकाल के चार मास व्यतीत किए। इसके बाद वे पुन: वैशाली आ गए और मर्कट नामक सरोवर के तट पर निवास करने लगे।

जब महामुनि मर्कट सरोवर के तट पर एक वृक्ष के नीचे बैठे थे, तभी उनके पास मार आया और सिर झुकाकर कहने लगा— "हे मुनि, नैरंजना नदी के तट पर जब आपने बुद्धत्व प्राप्त किया था, तो मैंने आपसे कहा था कि आप कृतकृत्य हो गए हैं। आप निर्वाण प्राप्त कीजिए। उस समय आप ने कहा था, जब तक मैं पीड़ित और पापियों का उद्धार नहीं कर लेता, तब तक मैं अपने निर्वाण की कामना नहीं करूँगा। अब आप बहुतों को मुक्त कर चुके हैं, बहुत से मुक्ति के मार्ग पर हैं। वे सभी निर्वाण प्राप्त करेंगे, अत: अब आप भी निर्वाण प्राप्त कीजिए।"

मार की विनती सुनकर भगवान बुद्ध ने कहा— "मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका हूँ। तुम चिंता मत करो। मैं आज से तीसरे मास निर्वाण प्राप्त करूगाँ।" भगवान बुद्ध के ये वचन सुनकर मार बहुत प्रसन्न हुआ और मुनि को प्रणाम कर वहाँ से चला गया।

मार के चले जाने के बाद भगवान बुद्ध अपने आसन पर बैठकर अपनी प्राणवायु को चित्त में ले गए और चित्त को प्राणों से जोड़कर योग-साधना द्वारा समाधि प्राप्त की। जैसे ही उन्होंने प्राणों का निरोध किया आकाश में चारों ओर से उल्कापात होने लगा। धरती काँपने लगी। चारों ओर बिजली चमकने लगी और वज्र गर्जना होने लगी। सर्वत्र प्रलयकालीन हलचल मच गई। इस प्रकार मर्त्यलोक, दिव्यलोक और आकाश में हुई हलचल की घड़ी में महामुनि ने गंभीर समाधि से निकल कर कहा— "आयु से मुक्त मेरा शरीर अब जर्जर हो गया है। वह उस रथ के समान है जिसका धुरा टूट गया हो। मैं इसे अब अपने योगबल से ढो रहा हूँ। परंतु जैसे अंडा फोड़कर पक्षी बाहर आ जाता है, वैसे ही मैं भी अब बाहर आ गया हूँ।"

लिच्छवियों पर अनुग्रह

इस प्रकार ही हलचल देखकर आनंद काँपने लगा और चक्कर खाकर वैसे ही गिर पड़ा जैसे जड़ के कट जाने पर वृक्ष धरती पर गिर पड़ता है। थोड़ी देर बाद कुछ सँभलकर वह खड़ा हुआ और सर्वज्ञ भगवान बुद्ध से इसका कारण पूछने लगा। उन्होंने बताया कि मेरा भूलोक में निवास का समय अब पूरा हो चुका है, इसलिए सर्वत्र हलचल है। अब मैं केवल तीन मास और इस पृथ्वी पर रहूँगा, फिर चिरंतन निर्वाण प्राप्त कर लूँगा।



यह सुनकर आनंद को बड़ा आघात लगा। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। तथागत ही उसके गुरु थे, स्वजन थे और सर्वस्व थे। वह अत्यंत दु:खी होकर रोने

लगा। विलाप करते हुए आनंद ने कहा— "आपके निश्चित प्रस्थान की बात सुनकर मेरा मन दु:खी हो गया है। शरीर संतप्त हो रहा है और ऐसा लग रहा है, जैसे आपसे सुना हुआ धर्म लुप्त होता जा रहा है। इस पापरूपी जंगल में भटकने वाले प्राणियों का मार्ग-दर्शन अब कौन करेगा?"

शोक संतप्त और व्याकुल आनंद को सांत्वना देते हुए भगवान बुद्ध ने उससे कहा— "हे आनंद! तुम्हें जगत का रहस्य समझना चाहिए। देखो, जो भी जन्म लेता है, अवश्य मरता है। इस लोक में कुछ भी स्वाधीन नहीं है, कोई भी प्राणी अमर नहीं है। यदि प्राणी अमर होते तो जीवन परिवर्तनशील नहीं होता। फिर मुक्ति का क्या महत्त्व होता?

हे आनंद! मैंने तुम्हें संपूर्ण मार्ग दिखा दिया है। बुद्ध किसी से कुछ भी नहीं छिपाता। मैं शरीर रखूँ या छोड़ूँ, मेरे लिए दोनों ही स्थितियाँ समान हैं। हाँ, मेरे जाने के बाद भी मेरे द्वारा जलाया गया यह धर्म का दीपक सदा जलता रहेगा। तुम उसी दीपक के प्रकाश में निर्द्वंद्व होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करो। मेरे जाने के बाद भी जो लोग इस धर्म के मार्ग मे स्थिर रहेंगे, वे निश्चित ही निर्वाण-पद प्राप्त करेंगे।"

जब भगवान बुद्ध आनंद को समझा रहे थे, तभी उनके निर्वाण का समाचार सुनकर सभी लिच्छवि दौड़ते हुए वहाँ आ गए और भगवान को प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गए। तब भगवान बुद्ध ने लिच्छवियों से कहा— "मैं आप सबके मन की बात जानता हूँ, आप भी अन्य लोगों की भाँति शोक संतप्त होकर यहाँ आए हैं। परंतु मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि यदि आप लोगों ने मेरे उपदेशों को ध्यान से सुना है और ज्ञान प्राप्त किया है, तो आपको मेरे जाने के कारण शोक नहीं करना चाहिए।"

भगवान बुद्ध ने उन्हें आगे समझाया— "देखो, इस परिवर्तनशील संसार में शरीर काल का भोजन है। जीवन क्षणभंगुर है। इस जगत में सदा रहने वाली कोई वस्तु नहीं है। पहले भी जो बुद्ध हुए हैं, वे भी अपनी बुद्धि के प्रकाश से संसार को प्रकाशित कर, तेल समाप्त होने वाले दीपक की तरह सदा के लिए बुझ गए। भविष्य में भी बुद्ध पैदा होंगे वे भी लकड़ी के जल जाने के बाद अग्नि की तरह शांत हो जाएँगे। मुझे भी अब उसी मार्ग पर जाना है।"



भगवान बुद्ध ने अंत में कहा— "इस रम्य नगरी में अभी भी कुछ अदीक्षित लोग रह गए हैं, अत: मुझे चलना चाहिए। आप लोग किसी प्रकार का शोक न करें और मेरे बताए धर्म के मार्ग का अनुसरण करें।"

इस प्रकार लिच्छवियों पर अनुग्रह कर, उन्हें उपदेश देकर भगवान बुद्ध उत्तर दिशा की ओर चल दिए। उनके पीछे-पीछे सभी लिच्छवि भी रोते-बिलखते चलने लगे। वे कह रहे थे— "अहा! विशुद्ध स्वर्णिम आभावाले गुरु की देह नष्ट हो जाएगी। क्या भगवान भी अनित्य है?"

विलाप करते हुए लिच्छवियों को भगवान बुद्ध ने पुन: समझाया और उन्हें अपने-अपने घर जाने की आज्ञा दी, परंतु जैसे लहर हवा की विपरीत दिशा में नहीं चल पाती वैसे ही वे घर लौटने में अपने आपको असमर्थ पा रहे थे।

जैसे ही भगवान बुद्ध वैशाली नगर को छोड़कर आगे बढ़े वह नगरी राहु द्वारा ग्रसित सूर्य के समान प्रभाशून्य हो गई। जैसे विद्या के बिना रूप, क्रिया के बिना ज्ञान, भक्ति के बिना बुद्धि, संस्कार के बिना शक्ति, सदाचार के बिना संपत्ति, श्रद्धा के बिना प्रेम, उद्योग के बिना लक्ष्मी, कर्म के बिना धर्म तथा वर्षा के बिना धान के खेत शोभाहीन लगते हैं, वैसे ही तथागत के बिना यह वैशाली शोभाहीन हो गई थी। उस दिन शोक के कारण वैशाली में किसी ने भोजन नहीं किया, न किसी ने जल ग्रहण किया।

उधर तथागत ने नगर की सीमा पर आकर उसकी ओर मुँह करके कहा— "हे वैशाली! अपने जीवन के शेष भाग में अब मैं तुम्हें फिर नहीं देखूँगा क्योंकि मैं अब निर्वाण के मार्ग पर जा रहा हूँ।" उन्होंने अपने पीछे-पीछे चले आ रहे सभी लोगों को समझाया, उन्हें अपने-अपने घर लौट जाने के लिए कहा और स्वयं भोगवती नगरी की ओर चल पड़े।

भोगवती नगरी में कुछ समय रहने के बाद भगवान बुद्ध ने अपने अनुयायियों को उपदेश दिए और कहा— "मेरे जाने के बाद आप लोग धर्म का अनुसरण करें। मैंने जो कुछ सूत्रों में बताया है और जो विनय में है, आप उसी का अनुसरण कीजिए। जिसमें विनय नहीं है, वह न मेरा वचन है और न धर्म। पवित्र लोगों के वचन वैसे ही ग्रहण करना, जैसे कि स्वर्णकार स्वर्ण को तपाकर उसकी परीक्षा करके उसे ग्रहण करता है। इसलिए शब्द को अर्थ के अनुसार ठीक-ठीक सुनकर ही उसे ग्रहण करना चाहिए। जो शास्त्र को अनुचित रीति से ग्रहण करता है वह अपने को ही क्षति पहुँचाता है। जैसे तलवार को अनुचित रीति से ग्रहण करने वाला अपने को ही काट लेता है।"



इस प्रकार अपने शिष्यों को उपदेश देकर भगवान बुद्ध ने पापापुर के लिए प्रस्थान किया। पापापुर पहुँचने पर मल्लों ने उनका समारोहपूर्वक स्वागत किया।

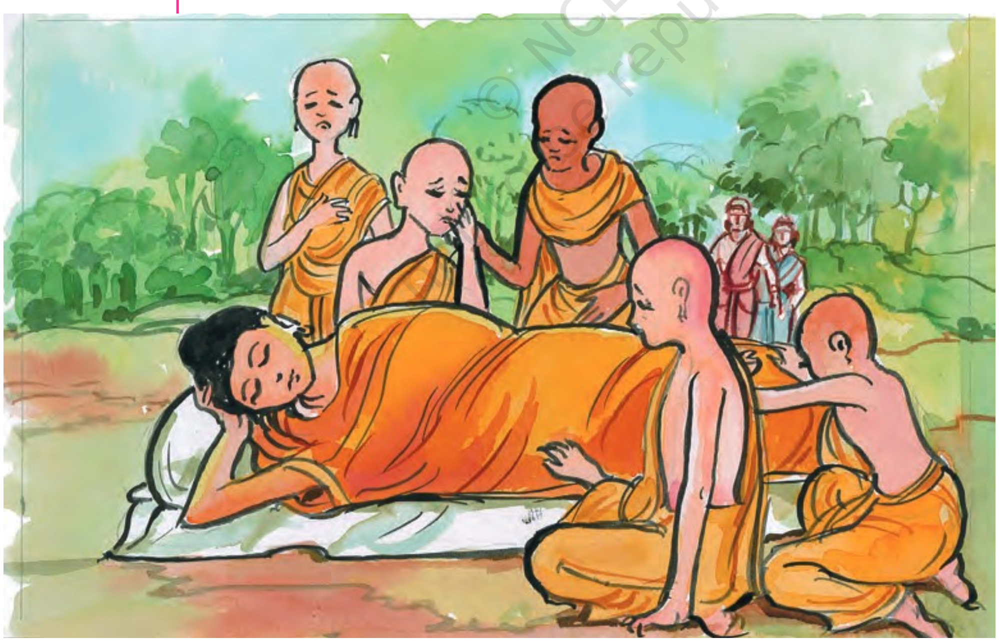
वहाँ उन्होंने अपने भक्त चुंद के घर अंतिम भोजन किया। अपनी शिष्य मंडली के साथ भोजन कर लेने के बाद उन्होंने चुंद को उपदेश दिए और फिर कुशीनगर के लिए प्रस्थान किया।

भगवान बुद्ध ने चुंद के साथ इरावती नदी को पार किया और फिर नगर के एक सुंदर उपवन में एक सरोवर के तट पर कुछ समय विश्राम किया। तदुपरांत उन्होंने हिरण्यवती नदी में स्नान किया और शोकाकुल आनंद को आदेश दिया, "हे आनंद! इन दोनों शाल वृक्षों के बीच मेरे शयन के लिए स्थान तैयार करो। हे महाभाग! आज रात्रि के उत्तर भाग में तथागत निर्वाण प्राप्त करेंगे।"

भगवान बुद्ध के आदेश के अनुसार आनंद ने शयन के लिए स्थान तैयार किया और फिर हाथ जोड़कर निवेदन किया— "भगवन्, शय्या तैयार है।" तब वह पुरुष-सिंह चिरनिद्रा के लिए शांत चित्त से शय्या के निकट गए। वे हाथ का तकिया बनाकर, एक पैर पर दूसरा पैर रखकर अपने शिष्यों की ओर उन्मुख होकर दाईं करवट लेट गए।

उस समय सारी दिशाएँ शांत हो गईं। सभी पक्षी नि:शब्द हो गए और सभी जीव-जंतु मौन, मानो सारा संसार स्तब्ध हो गया हो।

सूर्यास्त के समय जैसे पथिकों को घर जाने की शीघ्रता होती है, वैसे ही सभी उपस्थित शिष्यों को अंतिम लक्ष्य प्राप्त करने की शीघ्रता होने लगी। तब भगवान



बुद्ध ने आनंद से कहा— "हे आनंद! तुम मल्लों को मेरे प्रयाण की सूचना दे दो, वे भी निर्वाण देख लें, जिससे बाद में उन्हें पश्चाताप न हो।"

आदेशानुसार आनंद ने जाकर मल्लों को सूचित किया कि तथागत अब अंतिम शय्या पर हैं। यह सुनकर सभी मल्ल अत्यंत व्याकुल होकर आँसू बहाते हुए निकल पड़े। वे शीघ्र ही महामुनि के पास आए और अपने आँसुओं से भगवान बुद्ध के चरणों को भिगोते हुए उनके सम्मुख मौन होकर खड़े हो गए।

सभी मल्लों को व्याकुल देखकर भगवान बुद्ध ने कहा— "आनंद के समय दु:खी होना उचित नहीं है। यह दुर्लभ और काम्य लक्ष्य मुझे आज प्राप्त हो रहा है। मुझे आज वह सुखमय पुण्य प्राप्त हो रहा है, जो पंचभूतों से मुक्त, जन्म से रहित, इंद्रियातीत, शांत और दिव्य रूप है। जिसके बाद किसी प्रकार का शोक नहीं होता। यह शोक का समय नहीं है, क्योंकि सभी दु:खों का मूल मेरा भौतिक शरीर आज निवृत्त हो रहा है।"

भगवान बुद्ध के वचन सुनकर एक वृद्ध मल्ल ने कहा— "सुजन के लिए हमें शोक नहीं करना चाहिए। फिर भी हमारा चित्त दु:खी है, क्योंकि अब हमें आपके दर्शनों का सौभाग्य नहीं मिल पाएगा। जगत के हितैषी के जाने पर भला कौन शोक नहीं करेगा? शोचनीय तो वे हैं, जिन्होंने मुनि के दर्शन करके भी सुमार्ग का अनुसरण नहीं किया। सोने की खान में रहकर भी जो दरिद्र ही रहा।"

वृद्ध मल्ल के वचन सुनकर भगवान बुद्ध ने कहा— "सच तो यह है कि मात्र मेरे दर्शनों से निर्वाण नहीं मिल सकता। जो मेरे धर्म को ठीक से समझता है, वह मेरे दर्शन के बिना भी दुखों के जाल से मुक्त हो जाता है। ओषधि के सेवन के बिना मात्र वैद्य के दर्शन से रोग से मुक्ति नहीं होती। इसलिए श्रेय का आचरण करो। जीवन तेज़ हवा के बीच दीपशिख की तरह चंचल है।" इस प्रकार महामुनि के दर्शन कर और उनके उपदेश सुनकर सभी मल्लों ने उन्हें प्रणाम किया और आदेशानुसार वे अपने-अपने घरों को लौटने लगे।

महापरिनिर्वाण



मल्लों के चले जाने पर सुभद्र नाम का त्रिदंडी संन्यासी भगवान बुद्ध के दर्शनों के लिए आ गया। वह एक सिद्ध पुरुष था। उसने आनंद से कहा कि निर्वाण के अंतिम क्षणों में मै भगवान बुद्ध के दर्शन करना चाहता हूँ। आनंद ने सोचा कि कहीं यह संन्यासी बुद्ध से शास्त्रार्थ न करने लगे। इसलिए उन्होंने संन्यासी को भगवान बुद्ध के निकट जाने से

रोका। परंतु तथागत ने लेटे-लेटे ही आनंद से कहा— "हे आनंद! इस जिज्ञासु मुमुक्षु को रोको मत, आने दो।" यह सुनकर सुभद्र सविनय सुगत के पास गया और प्रणाम करके बोला, "हे भगवन्! मैंने सुना है कि आपने मोक्ष के जिस मार्ग का प्रतिपादन किया है, वह अन्य सभी मार्गों से भिन्न है। कृपापुंज, वह मार्ग कैसा है? मुझे बताने की कृपा करें। मैं जिज्ञासावश आपके पास आया हूँ, विवाद के लिए नहीं।"

सुभद्र की प्रार्थना सुनकर तथागत ने उसे अष्टांग मार्ग का उपदेश दिया। इसे सुनते ही सुभद्र की ज्ञान-दृष्टि सम्यक रूप से खुल गई। वह उसी तरह प्रसन्नता का अनुभव करने लगा, जैसे भटका हुआ राही अपने गाँव पहुँच जाने पर करता है। उसने गद्‌गद् होकर कहा— "मैं अब तक जिस मार्ग का अनुसरण कर रहा था, वह श्रेयस्कर नहीं था। आज मुझे सच्चा मार्ग मिल गया है।" अत्यंत प्रसन्न होकर सुभद्र ने भगवान बुद्ध की ओर देखा और आँखों में आँसू भरकर निवेदन किया— "हे पूज्य गुरुवर, आपकी मृत्यु का दर्शन करना मेरे लिए उचित नहीं होगा, अत: मैं उससे पहले ही अपनी देह त्यागकर निर्वाण पद प्राप्त करने की अनुमति चाहता हूँ।" ऐसा कहकर त्रिदंडी सुभद्र ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया शैल की तरह स्थिर होकर बैठ गया और एक ही क्षण में वायु से बुझे दीपक की भाँति निर्वाण को प्राप्त कर गया। संस्कार के ज्ञाता तथागत ने तब सुभद्र का अंतिम संस्कार करने का आदेश दिया और कहा— "सुभद्र मेरा उत्तम और अंतिम शिष्य था।"

आधी रात बीतने पर जब चाँदनी के प्रकाश का विस्तार हुआ, सारा वन प्रदेश पूरी तरह शांत हो गया। तब भगवान बुद्‌ध ने वहाँ उपस्थित सभी शिष्यों को बुलाया और अंतिम उपदेश दिया। उन्होंने कहा— "मेरे निर्वाण के बाद आप सबको इस 'प्रातिमोक्ष' को ही अपना आचार्य, प्रदीप तथा उपदेष्टा मानना चाहिए; आपको उसी का स्वाध्याय करना चाहिए; उसी के अनुसार आचरण करना चाहिए; यह प्रातिमोक्ष शील का सार है; मुक्ति का मूल है, इसी से मोक्ष प्राप्त हो सकता है।"

तथागत ने प्रातिमोक्ष के सारे नियम विस्तार से समझाए और अंत में कहा— "मैंने गुरु का कर्तव्य निभाया है। आगे तुम लोग साधना करो। विहार, वन, पर्वत, जहाँ भी रहो, धर्म का आचरण करो। यदि मेरे बताए आर्य सत्यों के विषय में किसी को कोई शंका हो, कोई प्रश्न हो, तो पूछ लो।"



तथागत के मुख से अंतिम उपदेश ग्रहण करने के बाद जब सभी शिष्य मौन और शांत बैठे रहे, तो अनिरुद्‌ध ने तथागत से निवेदन किया— "हे सुगत, आप द्वारा प्रतिपादित आर्य सत्यों में किसी को भ्रम नहीं है।"

अनिरुद्ध की बात सुनकर तथागत ने कहा— "हे अनिरुद्ध! सभी की मृत्यु निश्चित है। अब मेरे जीवित रहने से संसार को कोई लाभ नहीं। स्वर्ग और भू-लोक में जो भी दीक्षित होने योग्य थे, वे सभी धर्म में दीक्षित हो गए। अब इन्हीं के द्वारा मेरा धर्म जनता में प्रचलित होगा और उससे संसार में स्थायी शांति स्थापित होगी। तुम सब लोग शोक त्यागकर जागरूक रहो, मेरा यही अंतिम वचन है।"

इतना कहकर भगवान बुद्ध ने प्रथम ध्यान में प्रवेश किया, फिर दूसरे ध्यान में और इस तरह क्रमश: ध्यान के अनेक स्तरों को पारकर पुन: चतुर्थ ध्यान में आए और सदा के लिए शांत हो गए।

महापरिनिर्वाण के बाद

भगवान बुद्ध के निर्वाण प्राप्त करने के बाद सारा संसार ऐसा लगने लगा, जैसे बिना चंद्रमा के आकाश, पाले से मुरझाए कमलों का सरोवर अथवा धन के अभाव में निष्फल विद्या।

निर्वाण का समाचार सुनकर आकाश से देवतागण भी उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने लगे। उनमें से एक ने कहा— "अहो! यह सारा संसार नश्वर है, जहाँ मृत्यु के लिए जन्म होता है और जन्म के लिए मृत्यु। जो जन्म और मृत्यु दोनों से मुक्त है, वही भाग्यवान है। देखो, ज्ञान की ज्वाला तथा यश रूपी ज्योति को आज काल ने सदा के लिए शांत कर दिया है।" किसी मुनि श्रेष्ठ ने अपनी श्रद्धांजलि देते हुए कहा— "यह संसार असार है, यहाँ सभी कुछ नश्वर है। जो सारे लोक का गुरु था, वह भी आज कालकवलित हो गया।"

अंधकार में डूबे लोक को देखकर अनिरुद्ध ने कहा— "इस लोक की गति कैसी विचित्र है! तथागत ने दुख-मुक्त होकर तपस्या की, आलस्य-मुक्त होकर धर्माचरण किया, लोभ-मुक्त होकर योगाभ्यास किया और अब मोह-मुक्त होकर इस शरीर का भी त्याग कर दिया। जैसे बुद्धि के बिना विद्या, आचरण के बिना क्रिया तथा दया के बिना धर्म निरर्थक होता है, वैसे ही शाक्य मुनि के बिना यह संसार आज व्यर्थ लग रहा है।"

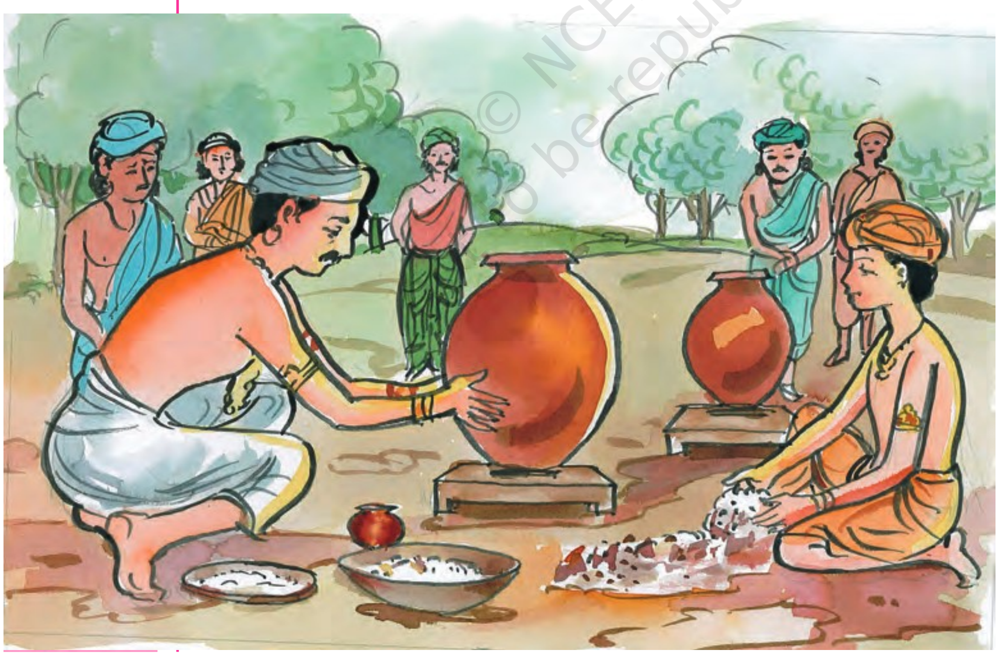


भगवान बुद्ध के निर्वाण का समाचार जैसे ही मल्लों ने सुना वे भी रोते हुए वहाँ दौड़े चले आए और विलाप करने लगे। फिर मल्लों ने मिलकर महामुनि के शव को स्वर्णमय सुंदर शिविका में स्थापित किया। विविध प्रकार की सुगंधित फूल मालाओं से भक्तिपूर्वक पूजा की। शिविका को श्वेत कपड़े से ढँका और चँवर डुलाते हुए उसे अपने कंधों पर उठाया।

भक्तिपूर्वक भगवान बुद्ध की शव-शिविका को वे नगर के मध्य भाग में ले आए। फिर वे नगर के नागद्वार से बाहर निकले और हिरण्यवती नदी को पार किया। उन्होंने मुकुट चैत्य के पास चंदन, अगरु तथा वल्कल आदि से चिता बनाई और उस पर महामुनि के शव को रख दिया। दीपक जलाकर मल्लों ने चिता में आग दी, परंतु बार-बार प्रयत्न करने पर भी चिता में आग नहीं लगी। भगवान बुद्ध का प्रिय शिष्य काश्यप अभी मार्ग में ही था, उसी के अभाव में चिता में आग नहीं लग पा रही थी। जैसे ही काश्यप दौड़ते हुए वहाँ आए और उन्होंने अपने गुरु को साष्टांग दंडवत प्रणाम किया, चिता में स्वत: ही आग लग गई।

चिता की अग्नि ने भगवान बुद्ध के शरीर के मांस, चर्म, बाल तथा अन्य अवयवों को जला दिया परंतु उनकी अस्थियाँ यथावत बनी रहीं। उन्हें चिता की अग्नि न जला सकी।

चिता के शांत हो जाने पर मल्लों ने भगवान बुद्ध की अस्थियों को शुद्ध जल से धोया और उन्हें स्वर्णकलश में रखा। उसे अपने नगर के मध्य ले गए। लोगों ने महामुनि की प्रशंसा में स्तोत्र गाए। किसी ने कहा— "इस घट में वे धातु (अस्थियाँ) स्थापित हैं जिन्हें चिता की अग्नि नहीं जला सकी।" किसी ने कहा— "ये अस्थियाँ, मंगलमय हैं, अमूल्य हैं। हम इन्हें यहाँ स्थापित कर रहे हैं, जिससे संसार को शांति प्राप्त हो।"



किसी अन्य ने कहा— "अहो! काल कितना निष्ठुर है। इसने महामुनि को भी नहीं छोड़ा, जिसके धर्म और यश से सारा चराचर जगत चमत्कृत है।"

बाद में मल्लों ने अस्थिकलश के लिए अत्यंत सुंदर पूजा-भवन का निर्माण करवाया और उसमें अस्थिकलश स्थापित किया। कुछ समय तक मल्लों ने भगवान बुद्ध के अस्थिकलश की विधिवत पूजा-अर्चना की, परंतु धीरे-धीरे पड़ोसी राज्यों से दूत आने लगे और भगवान बुद्ध की अस्थियों को माँगने लगे। एक दिन सात पड़ोसी राज्यों से दूत आए और उन्होंने अस्थियाँ माँगी, परंतु भगवान बुद्ध की अस्थियों के लिए मन में अत्यंत श्रद्धा होने तथा अपने बल पर अभिमान होने के कारण मल्लों ने भगवान बुद्ध की अस्थियाँ देने से मना कर दिया और वे लड़ने की तैयारी करने लगे।

दूत लौट गए और उन्होंने सारी बातें अपने-अपने राजाओं से कहीं। दूतों की बात सुनकर पड़ोसी राजा भी क्रोधित हुए। उन्होंने मिलकर युद्ध करने का निर्णय किया। वे अपनी-अपनी सेना लेकर युद्ध के लिए निकल पड़े। पड़ोसी राज्यों की सेनाओं ने कुशपुर (कुशीनगर) को चारों ओर से घेर लिया और वे मल्लों को ललकारने लगे।

पुरवासी मल्ल भी संगठित होने लगे। उन्होंने विविध प्रकार के शस्त्र-अस्त्र धारण किए। वीरों की पत्नियों ने सैनिकों को तिलक लगाए और रणगीत गाए। सभी सैनिक सिंहों की तरह गरजने लगे और शंख बजाने लगे।



इस प्रकार युद्ध के लिए तैयार दोनों पक्षों को देखकर करुणा और दया से भरकर द्रोण नाम के एक ब्राह्मण ने सातों पड़ोसी राजाओं के पास जाकर निवेदन किया— "राजन! बाहर के शत्रुओं को शस्त्रों से जीतना सरल है, परंतु परकोटे में बैठे शत्रु को जीतना सरल नहीं। यदि नगर को घेर कर अंदर के शत्रुओं को जीत भी लिया तो भी वह धर्म युद्ध नहीं होगा। इसे निरपराध नगरवासियों की हत्या ही कहा जाएगा इसलिए थोड़ा सोचिए और शांति का उपाय कीजिए। शस्त्र से जीते गए मनुष्यों का मन फिर से कुपित हो सकता है, परंतु शांति के उपायों से जीते गए मनुष्यों का मन सदा के लिए शांत हो जाता है। आप लोग जिस शाक्य मुनि का सम्मान करना चाहते हैं, उसी की आज्ञा से उसी के उपदेशों के अनुसार शांति का उपाय कीजिए।"

द्रोण की बातें सुनकर सातों राजाओं का क्रोध कुछ शांत हुआ। उन्होंने उनसे कहा— "हे ब्राह्मण, आप सत्य कहते हैं। हम लोगों की धर्म में, प्रेम में पूरी आस्था है, परंतु हमें अपने बल पर भी पूरा विश्वास है। हमने शाक्य मुनि में अतिशय भक्ति के कारण ही शस्त्र ग्रहण किया है। हम तो शाक्य मुनि की पूजा के लिए ही लड़ रहे हैं। यदि यह कार्य बिना युद्ध हो जाए तो हमें कोई विरोध नहीं है। आप हमारे दूत बनकर जाइए और मल्लों को समझाइए। हमारा उनसे कोई वैर नहीं है, हम तो भगवान बुद्ध के प्रति अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करना चाहते हैं।"

इस प्रकार पड़ोसी राजाओं से बात करके ब्राह्मण द्रोण कुशीनगर गए और उन्होंने मल्लों को समझाया— "हे मल्लों, नगर के बाहर जो सात राजा अपनी सेनाओं के साथ खड़े हैं, उनके पास अमोघ आयुध हैं और उनका बल अजेय है, परंतु वे शाक्य मुनि के धर्म के कारण ही डरे हुए हैं। वे यहाँ राज्य-प्राप्ति के लोभ से नहीं आए और न ही अहंकारवश आए हैं। भगवान बुद्ध जैसे आपके गुरु हैं, वैसे ही वे हमारे भी गुरु हैं और इन राजाओं के भी। इसलिए ये राजा भी शाक्य मुनि की अस्थियों की पूजा के लिए आए हैं।

शाक्य मुनि का उपदेश है कि धन की कृपणता उतना बड़ा पाप नहीं है, जितना बड़ा धर्म की कृपणता है। राजाओं का संदेश है कि यदि आप भगवान बुद्ध की धातु (अस्थियाँ) नहीं देना चाहते तो नगर के द्वार से बाहर आइए और वीर अतिथियों का स्वागत कीजिए।"



द्रोण ने आगे कहा— "यह इन राजाओं का संदेश है जो सद्भावना और साहस से भरा है। मैंने इनकी बातों पर धैर्यपूर्वक विचार किया है, अत: मेरी भी बात

सुनिए— कलह से न किसी को सुख मिलता है और न ही धर्म होता है। शाक्य मुनि ने सदा क्षमा का उपदेश दिया है। जिस महामुनि ने क्षमा से स्वयं शांति प्राप्त की और हज़ारों लोगों की शांति प्रदान की, उस दयालु के निमित्त व्यर्थ रक्तपात उचित नहीं है। इसलिए आप लोग इन राजाओं को धातु प्रदान कीजिए। यही आपका धर्म है। इससे आपको यश मिलेगा। ये सभी राजा आपके मित्र हो जाएँगे और सारी जनता को शांति मिलेगी।"



द्रोण की बातें सुनकर मल्लों का क्रोध शांत हो गया। उन्होंने कहा— "हे विप्रवर! आपके वचन बड़े कल्याणकारी हैं। आप हमें सन्मार्ग पर ले आए हैं। आपने जैसा कहा है, हम वैसा ही करेंगे।"

इस प्रकार द्रोण के प्रयत्नों से विवाद का अंत हुआ। फिर सबने मिलकर भगवान बुद्ध की मंगलमय धातुओं को आठ भागों में बाँटा। एक-एक भाग प्रत्येक राजा को दिया गया और एक भाग स्वयं मल्लों ने अपने पास रखा।



भगवान बुद्ध की अस्थियाँ लेकर सातों राजा प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने राज्यों को लौट गए। उन्होंने अपनी-अपनी राजधानी में इन अस्थियों पर स्तूप बनवाए और उनकी पूजा की।

द्रोण ने भी अपने देश में स्तूप बनवाने के लिए वह घट लिया, जिसमें पहले सभी अस्थियाँ रखी थीं। पिसल जाति के बुद्ध भक्तों ने भगवान बुद्ध के शरीर की राख ली।

इस प्रकार प्रारंभ में श्वेत पर्वतों के समान आठ स्तूपों का निर्माण हुआ, जिनमें भगवान बुद्ध की अस्थियाँ रखी गयीं थीं। द्रोण के घटवाला नवाँ स्तूप बना और दसवाँ स्तूप बना, जिसमें भगवान बुद्ध के शरीर की राख रखी गई थी।

स्तूपों के निर्माण के बाद राजा, सामंत तथा अन्य सभी जन इनकी पूजा करने लगे। स्तूपों पर अंखंड ज्योति जलती रहती तथा रात-दिन घंटे बजते रहते थे।

कुछ समय के बाद एक दिन राजगृह में पाँच सौ बौद्ध भिक्षु एकत्र हुए और भगवान बुद्ध द्वारा प्रवर्तित धर्म को स्थायी रूप देने के लिए उन्होंने विचार-विमर्श किया। सभी भिक्षुओं ने मिलकर भगवान बुद्ध के उपदेशों का संग्रह करने का निर्णय लिया।

आनंद सदा भगवान बुद्ध के साथ रहे थे और उन्होंने उनके मुख से सभी धर्मोपदेश सुने थे, इसलिए सभी भिक्षुओं ने आनंद से निवेदन किया कि संसार के कल्याण के लिए वे सभी धर्मोपदेशों को दुहराएँ।

आनंद ने 'एवं मे सुतम्' (मैंने ऐसा सुना है) इस तरह कहते हुए, जैसा भगवान बुद्ध से सुना था, वैसे ही क्रमश: प्रसंग, समय, स्थान आदि के साथ सभी धर्मोपदेश कहे। इस प्रकार आनंद तथा दूसरे वरिष्ठ भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध के धर्मशास्त्र का स्वरूप निश्चित किया।

कालांतर में देवानाम प्रियदर्शी का जन्म हुआ। उसने जनहित के लिए बहुत से स्तुपों का निर्माण करवाया। इसके कारण वह 'चंड अशोक' 'धर्मराज अशोक' कहलाने लगा। उसने धातु गर्भित स्तूपों से धातु लेकर अनेक भाग किए और उन्हें सैकड़ों स्तूपों में स्थापित किया।



जब तक जन्म है, तब तक दु:ख है, इसलिए पुनर्जन्म से मुक्ति के समान कोई सुख नहीं है। इसीलिए और कौन उतना पूज्य हो सकता है जितना कि वह, जिन्होंने जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु से स्वयं मुक्त होकर सारे संसार को मुक्ति का मार्ग दिखाया है।

प्रश्न

1. मार ने बुद्ध को क्या याद दिलाया? उत्तर में बुद्ध ने क्या कहा?
2. आनंद कौन था? उसे क्या जानकर आघात लगा?
3. तथागत ने परिनिर्वाण से पूर्व मल्लों को क्या समझाया?
4. अपने अंतिम उपदेश में बुद्ध ने अपने शिष्यों से क्या कहा?
5. मल्लों और पड़ोसी राजाओं के बीच युद्ध की संभावना क्यों उत्पन्न हो गई? यह संघर्ष कैसे टल गया?
6. भगवान बुद्ध के उपदेशों को संग्रह करने का भार किसे सौंपा गया और क्यों?



शब्दार्थ और टिप्पणी

अंगीरस/अंगिरा : ब्रह्मा के दस मानसपुत्रों में से एक सप्त ऋषियों में से एक ऋषि। इन्होंने स्मृतियों की रचना की थी, इसलिए इन्हें स्मृतिकार भी कहा जाता है।

अंतेवासी : गुरुकुल या आश्रम में रहने वाला छात्र

अंबरीष : सूर्यवंशी राजा इक्ष्वाकु की अट्ठाईसवीं पीढ़ी में भगीरथ के पौत्र, मांधाता के पुत्र और परम वैष्णव भक्त

अतिमानवीय : मानवेतर, अलौकिक

अनात्मवाद : यह वाद आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करता। शरीरांत के साथ आत्मा का नाश हो जाता है

अनासक्त : निर्लिप्त, उदासीन

अनित्य : नश्वर, अस्थिर

अनुद्विग्न : शांत, चिंतारहित

अपवर्ग : मोक्ष

अभिनिष्क्रमण : संसार से विरक्ति, गृह त्याग

अभिभूत : चकित, भौंचक्का

अभीष्ट : चाहा हुआ, मनोरथ

अभ्यर्थना : अनुरोध, विनती

अभ्युदय : वृद्धि, उत्तरोत्तर उन्नति

अमात्य : मंत्री

अर्हत : जीवन मुक्त, मुक्त पुरुष, जिसने जीवन में ही निर्वाण प्राप्त किया है और जीवन के बाद भी निर्वाण को ही प्राप्त होगा, बौद्ध पुरोहित

अर्हता : योग्यता, परम ज्ञान, किसी पद के लिए वांछित विशेष योग्यता

अलक्तक : पैरों में लगाने का लाल रंग, महावर, आलता

अश्विनी कुमार : दो भाई जो आयुर्वेद के आचार्य एवं देवताओं के वैद्य हैं

अष्टांग मार्ग : आठ अंगों वाला मार्ग— 1.सम्यक दृष्टि 2. सम्यक संकल्प 3. सम्यक वाणी 4. सम्यक कर्म 5. सम्यक आजीविका 6. सम्यक व्यायाम 7. सम्यक स्मृति 8. सम्यक समाधि

आत्मवेत्ता : आत्मज्ञानी

आर्तनाद : दर्दभरी पुकार

इक्ष्वाकु : पुराणों के अनुसार वैवस्वत मनु का पुत्र जो सूर्यवंश (इक्ष्वाकु वंश) का प्रवर्तक था, जिसकी राजधानी अयोध्या थी।

उत्ताल : ऊँची

उपदेष्टा : उपदेशक

उपनयन संस्कार : हिंदू धर्म के अनुसार मानव जीवन के सोलह संस्कारों में से एक। इसमें यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात बालक को विद्याध्ययन के लिए भेजा जाता है।

कंटकाकीर्ण : काँटों से भरा हुआ, बाधायुक्त

कार्तिकेय : शिव के पुत्र जिनका पालन-पोषण चंद्रमा की स्त्रियों – कृत्तिकाओं ने किया था, इसी कारण यह कार्तिकेय कहलाता है। तारकारि, षणमुख और कुमार इनके अन्य नाम हैं।

काश्यप : एक प्राजापति का नाम जो रामायण और महाभारत के अनुसार ब्रह्मा के पौत्र और मारिच के मानसपुत्र थे।

कुबेर : धनाध्यक्ष तथा उत्तर दिशा के स्वामी माने जाते हैं। इन्होंने अलकापुरी बसाई थी।

कौंडिन्य : पंचवर्गीय भिक्षु, गौतम बुद्ध के अनुयायी
चातुर्मास : वर्षा के चार महीनों का संयुक्त नाम 'चातुर्मास' है। इन महीनों में विभिन्न नियमों (भोजन तथा कुछ आचार-व्यवहारों का निषेध) का पालन होता है
च्यवन : भृगु ऋषि और पुलोमा के पुत्र जो एक प्रसिद्ध ऋषि थे। बलवर्धक च्यवनप्राश ओषधि इन्हीं के द्वारा बनाई गई है।
जरावस्था : वृद्धावस्था
जितेंद्रिय : जिसने इंद्रियों को अपने वश में कर लिया हो, संयमी
ज्योतिष्क : देवताओं का वर्ग
तत्वज्ञान : अध्यात्म ज्ञान, तीन तत्व 1. ईश्वर (सर्वात्मा) 2. चित् (आत्मा) और 3. अचित् (जड़ प्रकृति) संबंधी ज्ञान
तात : पिता, आदरणीय व्यक्ति, एक संबोधन जो बराबर के लोगों या अपने से छोटों के लिए प्रयुक्त होता है।
तृष्णा : प्यास
त्रिवर्ग : धर्म, अर्थ, काम-इन तीनों की प्राप्ति ही मनुष्यों का संपूर्ण पुरुषार्थ है। पर बुद्ध के अनुसार त्रिवर्ग नाशवान हैं और उनसे तृप्ति नहीं होती।
दुंदुभि : डंका, नगाड़ा
ध्यानयोग : ध्यान लगाने की योग-क्रिया
ध्यानवस्थित : ध्यानमग्न
नंदन वन : स्वर्ग में स्थित देवराज इंद्र का उपवन
नंदीग्राम : अयोध्या के निकट एक गाँव जहाँ भरत ने चौदह वर्ष तक तपस्या की थी।
निरस्त : अस्वीकार
निरोध : वश में करने की क्षमता
निर्वाण : मोक्ष
निवृत्त : विरत, मुक्त
नैरंजना : गया (बिहार) के निकट बहने वाली फलगू नदी का पुराना नाम
नैष्ठिक : उपनयन से लेकर ब्रह्मयर्च का पालन करते हुए गुरुकुल में निवास करने वाला ब्रह्मचारी, निष्ठावान, किसी व्रत के अनुष्ठान में लगा हुआ।
परमार्थ : मोक्ष, उत्कृष्ट वस्तु, यथार्थ तत्व
परशुराम : राजा प्रसेनजित की पुत्री रेणुका और जमदग्नि ऋषि के पुत्र
परिनिर्वाण : पूर्ण निर्वाण, मोक्ष
परिव्राजक : भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह करने वाला संन्यासी
पर्यंक मुद्रा : योग का एक आसन, बैठने की मुद्रा जिसमें धनुषधारी अपना एक घुटना मोड़ कर और दूसरी टाँग को पीछे रख कर बाण चलाता है।
पितृ ऋण : पुत्र उत्पन्न करने से होने वाली ऋण–मुक्ति
पुराकाल : पुराने समय में, प्राचीन समय में
पुरुष–सिंह : मनुष्यों में श्रेष्ठ
पुष्परिणी : छोटा जलाशय, कमलयुक्त जलाशय
प्रज्ञा : बुद्धि
प्रतीति : जानकारी, ज्ञान
प्रत्यास्मरण : पुन: स्मरण
प्रातिमोक्ष : आचरण संहिता, साधुओं के लिए नियम

बलि : दैत्यों का एक राजा, भक्त प्रह्लाद का महाप्रतापी पौत्र, जिससे अश्वमेध यज्ञ के समय भगवान विष्णु ने वामन रूप में तीन पग भूमि दान में माँगी थी।
बाँबी : सर्प का बिल
बृहस्पति : सौर मंडल का पाँचवाँ और सबसे बड़ा ग्रह, एक ऋषि जो देवताओं के गुरु माने गए हैं।
ब्रह्मवेत्ता : ब्रह्म को जानने वाला
भृगु : प्रसिद्ध मुनि जो ब्रह्मा के पुत्र माने जाते हैं। परशुराम इन्हीं के वंशज थे।
भिक्षु : वह संन्यासी जो भिक्षा द्वारा प्राप्त पदार्थ का सेवन करता है
मंगलाचरण : कार्यारंभ के पूर्व की जाने वाली मंगल-स्तुति
मध्य/मध्यम मार्ग: तप और भोग इन दो अंतों के बीच का मार्ग
मल्ल : एक वीर क्षत्रिय जाति जिसका कुशीनगर (उत्तर-प्रदेश) के पास राज्य था।
महावृक्ष : पीपल वृक्ष
मांधाता : सूर्यवंशी राजा युवनाश्व के पुत्र, जिसकी राजधानी आयोध्या थी।
मार : बौद्ध मत में कामदेव को मार कहते हैं जो पौराणिक कामदेव से भिन्न है और मोक्ष-प्राप्ति में एक प्रकार से यह शैतान की भूमिका निभाता है।
मुमुक्षु : मोक्ष की कामना करने वाला
मृगदाव : अनेक मृगोंवाला वन
राजगृह : बिहार में पटना के निकट एक प्राचीन स्थान जो बौद्धों का तीर्थस्थल है।
लिच्छवि : प्रसिद्ध राजवंश जो प्राचीन मगध के आस-पास का क्षेत्र था और जिसका विस्तार नेपाल के पूर्वी भाग तक था। उसका वर्तमान क्षेत्र मुज़फ़्फ़रपुर और वैशाली (बिहार) हैं।
वज्रबाहु : दशार्ण देश का एक राजा, जिसने अपनी पत्नी और पुत्र के रोग-ग्रस्त होने पर उन्हें वन में त्याग दिया था।
वामदेव : एक वैदिक ऋषि
वाल्मीकि : रामायण के रचनाकार, आदि कवि, मुनि
विषाक्त : विषयुक्त, विष में बुझा हुआ
वृज्जि : एक प्राचीन जाति जिसकी राजधानी वैशाली थी। वर्तमान मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार)
शाक्य मुनि : शाक्य वंश में अवतीर्ण होने के कारण गौतम बुद्ध शाक्य मुनि कहलाते थे।
शावक : पशु-पक्षी का बच्चा
शुक्र : एक बहुत ही चमकदार तारा, शुक्राचार्य, दैत्यगुरु
श्रावस्ती : श्री राम के पुत्र की राजधानी जो उत्तर कोसल के गंगातट पर बसी हुई थी। वर्तमान बलरामपुर (उत्तर-प्रदेश)
श्रेयस्कर : कल्याणकर, मंगलकारी
सम्यक आचरण : उपयुक्त आचरण
सर्वार्थ : सभी प्रकार के पदार्थ और योग के विषय
सार्थवाह : व्यापारी
सिद्ध योगी : अलौकिक शक्तियों से संपन्न योगी
सुमंत : राजा दशरथ के मंत्री तथा सारथी
सुमेरु पर्वत : एक कल्पित स्वर्ण पर्वत जिसे पर्वतों का राजा कहा गया है।
सूर्यकांत मणि : एक प्रकार का स्फटिक जिसे सूर्य के सामने करने से आँच निकलती है।

□□